बड़े आदमी नहीं महामानव बनें

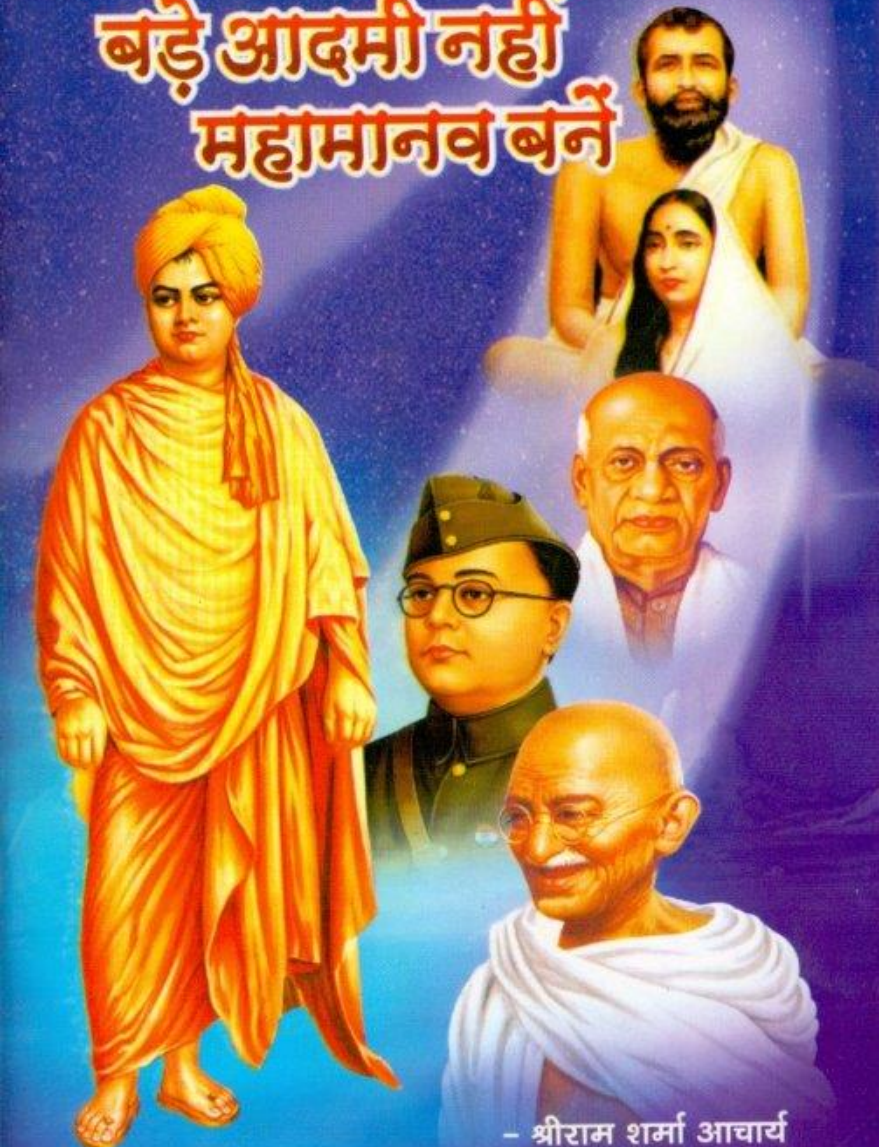

– श्रीराम शर्मा आचार्य

बड़े आदमी नहीं महामानव बनें

★

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१२ मूल्य : १०.०० रुपये

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

■

लेखक
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

■

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस
गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

आकांक्षाएँ उचित और सोद्देश्य हों

न जाने किस कारण लोगों के मन में यह भ्रम पैदा हो गया है कि ईमानदारी और नीतिनिष्ठा अपनाकर घाटा और नुकसान ही हाथ लगता है। संभवतः इसका कारण यह है कि लोग बेईमानी अपनाकर छल-बल से, धूर्तता और चालाकी द्वारा जल्दी-जल्दी धन बटोरते देखे जाते हैं। तेजी से बढ़ती संपन्नता देखकर देखने वालों के मन में भी वैसा ही वैभव अर्जित करने की आकांक्षा उत्पन्न होती है। वे देखते हैं कि वैभव संपन्न लोगों का रौब और दबदबा रहता है। किंतु ऐसा सोचते समय वे यह भूल जाते हैं कि बेईमानी और चालाकी से अर्जित किए गए वैभव का रौब और दबदबा बालू की दीवार ही होता है, जो थोड़ी-सी हवा बहने पर ढह जाता है तथा यह भी कि वह प्रतिष्ठा दिखावा, छलावा मात्र होती है क्योंकि स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से कतिपय लोग उनके मुँह पर उनकी प्रशंसा अवश्य कर देते हैं, परंतु हृदय में उनके भी आदर भाव नहीं होता।

इसके विपरीत ईमानदारी और मेहनत से काम करने वाले, नैतिक मूल्यों को अपनाकर नीतिनिष्ठ जीवन व्यतीत करने वाले भले ही धीमी गति से प्रगति करते हों परंतु उनकी प्रगति ठोस होती है तथा उनका सुयश देश काल की सीमाओं को लांघकर विश्वव्यापी और अमर हो जाता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध साहित्यकार जार्ज बर्नार्ड शॉ को कौन नहीं जानता। उन्होंने अपना जीवन प्रापर्टी डीलर के यहाँ उसके कार्यालय में क्लर्क की नौकरी से प्रारंभ किया था।

प्रापर्टी डीलर और कई काम करता था तथा मकानों को किराए पर उठाना, बीमा एजेंसी चलाना आदि। उसके यहाँ शॉ का काम था मकानों तथा अन्य स्थानों के किराए वसूल करना, बीमे की किश्तें उगाहना, टैक्सों की वसूली और अदायगी कराना। ये काम करते समय उन्हें बड़ी-बड़ी रकमों का लेन-देन करना पड़ता था और बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यक्तियों से संपर्क करना पड़ता था। स्वभाव से बर्नार्ड शॉ इतने विनम्र थे कि किसी के साथ सख्ती या जोर

जबर्दस्ती नहीं कर पाते थे और लोग थे कि उनकी परवाह ही नहीं करते।

इन कारणों से वे अपने काम में अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर पा रहे थे। यद्यपि उनके मालिक को इससे कोई शिकायत नहीं थी, परंतु स्वयं बर्नार्ड शॉ को अपने काम से संतोष नहीं था। एक दिन उन्होंने अपने मालिक को सूचित करते हुए पत्र लिखा, जिसे त्याग पत्र की ही संज्ञा दी जा सकती है कि, 'महोदय मैं आपको सूचित कर देना चाहता हूँ कि इस महीने के बाद मैं आपके यहाँ काम नहीं कर सकूँगा। कारण यह है कि जितना वेतन आप मुझे देते हैं मैं उतना काम कर नहीं पाता।'

मालिक तो उनके काम से बहुत संतुष्ट था। वह उनके स्वभाव से बहुत प्रसन्न भी था कि उनके बारे में कभी किसी देनदार ने कोई शिकायत नहीं की। उसने बर्नार्ड शॉ को बहुत समझाया परंतु शॉ को यह उचित लग ही नहीं रहा था कि जितना वेतन वे लेते हैं इतना काम भी वे नहीं कर पाते।

अमेरिका के विख्यात लेखक हेनरी मिलर ने भी ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत किया था। उन दिनों मिलर ने साहित्य सेवा के क्षेत्र में नया-नया ही प्रवेश किया था। सन् १९१६ में भारत के विश्वविख्यात इंजीनियर श्री विश्वेश्वरैया अमेरिका गए। वहाँ उन्होंने अपनी पत्रिका के लिए मिलर से एक लेख लिखने को कहा। पारिश्रमिक तय हुआ दस डॉलर। मिलर ने दूसरे दिन लेख तैयार कर दे देने की बात कही। जब वह लेख तैयार कर लाए तो विश्वेश्वरैया उसे पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने लेखक को दो डालर और अधिक देते हुए कहा, लेख बहुत अच्छा बन पड़ा है। मैंने जिस स्तर की आशा की थी लेख उससे अच्छा लिखा गया है अतः इसका यही मूल्य उचित है।

मिलर ने इस पेशकश से इनकार करते हुए कहा, "लेकिन श्रीमानजी मैंने तो अच्छे से अच्छे लेख का ही पारिश्रमिक ठहराया था। यह अधिक है और अपने श्रम से अधिक मूल्य लेना नैतिकता के विरुद्ध है।"

श्रम का उचित मूल्य प्राप्त कर उसमें संतोष करना व्यक्ति को नीतिनिष्ठ तो बनाता ही है परिश्रमी भी बनाता है, क्योंकि तब किन्हीं की विवशताओं या परिस्थितियों का लाभ उठाने की बात दृष्टि में नहीं रहती। यह नियम निष्ठा अपना लेने पर व्यक्ति का पुरुषार्थ प्रखर होता जाता है। विख्यात विचारक लेखक ऐकिल हॉफर के पिता की जब मृत्यु हुई तो उनकी आयु मात्र १८ वर्ष थी। पिता ने इतना लाड़-प्यार दिया था कि उन्होंने उपार्जन के लिए क्या करना चाहिए, इसका कोई अनुभव प्राप्त नहीं किया था। परंतु उन्होंने हॉफर के मन में परिश्रम की रोटी ही खाने की बात बिठा दी थी। सो वे कहीं मेहनत मजदूरी कर ही अपना जीवन यापन करना चाहते थे और क्षेत्र में अनुभव की दृष्टि से वे एकदम कोरे थे।

पिता की मृत्यु के बाद वे अनाथ, निराश्रित और बेकार हो गए। यहाँ वहाँ काम प्राप्त करने के लिए भटकने लगे। भूख से आँतें कुलबुलाने लगीं। एक होटल के सामने इस विचार से खड़े ही थे कि उसके मालिक से काम देने के लिए निवेदन कर सकें पर मालिक ग्राहकों में व्यस्त था अतः वह हॉफर की ओर बीच-बीच में एकाध दृष्टि से देख लेता था। बहुत देर से खड़े देखकर उसने अनुमान लगाया कि यह शायद कोई भिखारी है और भूखा भी है। होटल मालिक ने उन्हें बुलाकर पूछा, 'भूख लगी है बेटे !'

भूख तो लगी है, युवक ने निस्संकोच भाव से कहा। होटल मालिक ने बिना कुछ कहे एक प्लेट में खाना रखा और हॉफर की ओर बढ़ाकर कहा, "लो खा लो।"

'परंतु मैं ऐसे नहीं खाऊँगा।'

'तो कैसे खाओगे ?' होटल मालिक ने विस्मित होकर पूछा।

'मैं भूखा तो हूँ, परंतु काम करके ही रोटी खाना चाहता हूँ। मुफ्त में नहीं, हॉफर ने कहा, मालिक उनकी यह बात सुनकर बड़ा प्रभावित हुआ और श्रम के प्रति निष्ठा तथा स्वाभिमान को समझते हुए अपने यहाँ बर्तन साफ करने का काम लगा दिया। इसी श्रमशीलता के बल पर हॉफर धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए ख्यातिलब्ध लेखक बन सके।

उन्हीं दिनों हॉफर ने इतनी अधिक मेहनत और लगन से काम करना शुरू किया कि मालिक को लगा वह दो व्यक्तियों के बराबर काम कर रहे हैं। मालिक ने उनके वेतन में कुछ बढ़ोत्तरी करना चाहा और कहा कि, 'मैं तुम्हारे काम से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जी जान से मेहनत करते हो और अपने काम को भी अच्छी तरह समझते हो। इसलिए मैं तुम्हारा वेतन बढ़ा रहा हूँ।'

हॉफर ने कहा, 'यदि मेरे अन्य सभी साथियों का वेतन बढ़ाया जा रहा है तो ही मेरा भी वेतन बढ़ाइए। अन्यथा काम तो मुझे मेहनत और लगन से ही करना चाहिए। बताइए क्या आप मुझ से कामचोरी की आशा करते हैं।"

मालिक हॉफर की यह बात सुनकर दंग रह गया। उसने कहा, मैंने आज तक तुम जैसा लड़का नहीं देखा था। तुम तो मेरे बेटे से भी अधिक मेरी दुकान की चिंता करते हो। कुछ पढ़े लिखे हो ?"

हॉफर ने अपनी शैक्षणिक योग्यता के संबंध में बताया तो मालिक ने उनकी श्रमशीलता को सम्मानित करते हुए उनकी पदोन्नति कर दी और उन पर दूसरी बड़ी जिम्मेदारियाँ सौंप दीं।

ईमानदारी और श्रमशीलता का यह भी अर्थ है कि अपने श्रम के उचित मूल्य से अधिक की आकांक्षा अपेक्षा न की जाए। यह निष्ठा यदि विकसित कर ली जाए तो व्यक्ति प्रगति के उच्च सोपान पर चढ़ता चला जाता है और जो लोग बेईमानी, कामचोरी, दूसरों की मजबूरी से ही लाभ उठाने की बात सोचते हैं, वे आर्थिक दृष्टि से थोड़े-बहुत संपन्न भले ही बन जाएँ, इससे अधिक और आगे प्रगति नहीं कर सकते।

मनुष्य के उच्चस्तरीय आदर्शों एवं सिद्धांतों पर निष्ठा की परख ऐसे अवसरों पर होती है जब स्वार्थ, लोभ और मोह की परिस्थितियाँ प्रस्तुत होती हैं। सिद्धांतों एवं आदर्शों की कोरी बातें करना एक बात है पर उनका पालन करना उतना ही कठिन और एक सर्वथा भिन्न बात है। समाज में आदर्शों एवं सिद्धांतों की चर्चा करने वालों की कमी नहीं जो इन्हें भी वाक् विलास का साधन और प्रतिष्ठा अर्जित करने का एक सरल माध्यम मात्र मानते हैं। पर ऐसे व्यक्ति स्वार्थ, मोह एवं लोभ का आकर्षण प्रस्तुत होते ही फिसलते-गिरते अपनी

गरिमा गँवाते देखे जाते हैं। जिन्हें आदर्शों के प्रति आस्था होती है वे इन क्षणिक आकर्षणों से प्रभावित नहीं होते और अपनी न्याय प्रियता, कर्त्तव्य निष्ठा का परिचय देते हैं। ऐसे व्यक्तियों से ही समाज और देश गौरवान्वित होता है। पतन पराभव के प्रवाह में बहती भीड़ से अलग हटकर वे उल्टी दिशा में अपनी राह बनाते हैं। मणि मुक्तकों की भाँति चमकते तथा असंख्यों को प्रेरणा प्रकाश देते हैं। बड़े से बड़े प्रलोभन भी उन्हें डिगा नहीं पाते। समाज और राष्ट्र की सबसे मूल्यवान संपदा ऐसे ही व्यक्तित्व होते हैं जो कर्त्तव्यों का निर्वाह हर कीमत पर करते हैं।

जयपुर के एक परीक्षा केंद्र पर विजय कुमार नामक एक लड़का हाईस्कूल बोर्ड की परीक्षा दे रहा था। उसके पिता उसी स्कूल में अध्यापक हैं। संयोगवश पिता की ड्यूटी लड़के के कक्ष में पड़ी। यह जानकर कि इन्विजिलेटर के रूप में पिताजी नियुक्त हैं, विजय कुमार ने अवसर का लाभ उठाना चाहा। बिना किसी भय के उसने पुस्तक निकाली और उसे देखकर कापी पर प्रश्नों का हल लिखने लगा। पिता की दृष्टि अचानक अपने लड़के पर पड़ी उन्होंने तुरंत लड़के से कापी ले ली और नकल करने के आरोप का नोट लगा दिया। ड्यूटी पर नियुक्त साथ के एक अन्य मित्र ने लड़के का पक्ष लेना चाहा पर उन्होंने कापी नहीं लौटायी और यह कहते हुए कापी जमा कर ली कि मुझे कर्त्तव्य पालन पुत्र से भी अधिक प्रिय है। बोर्ड ने उस विद्यार्थी को दो वर्षों के लिए परीक्षा में सम्मिलित होने से वंचित कर दिया।

रतलाम सियासत में एक बार श्रीनिवास नामक व्यक्ति को अपने पुत्र न्यायाधीश की अदालत में पेश होना पड़ा। अभियोग था गबन करने का। पुत्र की अदालत में पिता के केस का फैसला सुनने के लिए भारी भीड़ एकत्रित हुई। अधिकांश का अनुमान था कि इस केस में पक्षपात अवश्य होगा। पर न्यायप्रिय न्यायाधीश ने अपने पद एवं गरिमा का पूरा-पूरा निर्वाह किया। विरुद्ध साक्ष्य एवं प्रमाणों के आधार पर अभियोग यथार्थ सिद्ध हुआ। न्यायाधीश ने पिता को छः माह की सजा और पाँच सौ रुपए अर्थ दंड का फैसला सुनाया। इस निष्पक्ष निर्णय को सुनकर उपस्थित वकील समुदाय तथा दर्शक हतप्रभ थे। फैसला सुनाने के बाद माननीय न्यायाधीश अपनी कुर्सी से

नीचे उतरे और पिता के चरणों में झुककर श्रद्धा पूर्वक नतमस्तक होकर बोले पिताजी मुझे क्षमा करना। मैंने पिता को नहीं एक अपराधी को सजा दी है। अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। कानून की दृष्टि में रिश्तों की तुलना में न्याय का महत्त्व अधिक है।

'कौडागिल' (मद्रास) के तत्कालीन सत्र न्यायाधीश श्री के० एम० संजीवैया की अदालत में एक चोरी का मुकदमा प्रस्तुत हुआ। सरकारी वकील ने न्यायालय में आवेदन पत्र प्रस्तुत करते हुए आपत्ति की कि मुकदमा दूसरे न्यायालय में ट्रांसफर किया जाना चाहिए। आपत्ति का आधार था कि अभियुक्त माननीय न्यायाधीश महोदय का पुत्र है। इसलिए न्याय में पक्षपात की संभावना है। न्यायाधीश के० एम० संजीवैया ने तर्क प्रस्तुत किया कि यदि निर्णय संतोषजनक व निष्पक्ष न हो तभी ऐसा किया जाना उचित है। जज महोदय के लिए यह परीक्षा की अवधि थी। एक ओर पुत्र का मोह, दूसरी ओर न्याय की रक्षा का गुरुत्तर दायित्व। पत्नी एवं सगे संबंधियों का दबाव अतिरिक्त रूप से न्याय से विचलित होने के लिए पड़ रहा था। पर दबाव और पुत्र के मोह पर उन्होंने विजय पायी। सभी साक्ष्यों, प्रमाणों एवं गवाहियों से यह स्पष्ट हो गया था कि पुत्र ने चोरी की है। श्री के० एम० संजीवैया ने अपराधी पुत्र को दो वर्ष का सश्रम कारावास का फैसला सुनाया। कुटुंबियों ने जब उलाहना दिया तो उन्होंने यह कहा कि "पिता के रूप में मेरी अभियुक्त से गहरी सहानुभूति है। पर न्याय की रक्षा पुत्र प्रेम की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है। कानून की नजर में अपने पराए के बीच कोई भेदभाव नहीं होता।"

पद प्रतिष्ठा धनवैभव पाने का लाभ प्रस्तुत होने पर भी अधिकांशतः व्यक्ति फिसल जाते हैं जबकि आदर्शों एवं सिद्धांतों के धनी व्यक्तित्व इन अवसरों पर भी चट्टान की तरह दृढ़ रहते देखे जाते हैं और क्षणिक भौतिक लाभों की तुलना में कर्त्तव्य निष्ठा नीतिमत्ता को अधिक महत्त्व देते हैं। प्रलोभन उन्हें डिगा नहीं पाते। ऐसे व्यक्तियों में स्वर्गीय चिम्मनलाल शीतलबाड़ का नाम उल्लेखनीय है। उन दिनों वे बंबई विश्वविद्यालय में किसी प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त थे। किसी मामले में अपने अनुचित स्वार्थ के लिए एक संपन्न व्यक्ति उनके पास पहुँचा। कार्य श्री चिम्मनलाल जी से संबद्ध था

उसने शीतलवाड़ को रिश्वत देना चाही पर उन्होंने इसके लिए स्पष्ट इंकार कर दिया शायद और अधिक धन राशि पर वे कार्य करने के लिए सहमत हो जाएँ, यह सोचकर वह प्रलोभन की राशि बढ़ाता गया।

एक लाख रुपए की राशि तक बढ़ाते हुए पहुँचाने पर उस व्यक्ति ने शीतलवाड़ से कहा, "देखिए श्रीमान ! आपको इतनी बड़ी राशि देने वाला कोई नहीं मिलेगा।" शीतलवाड़ ने आक्रोश भरे दृढ़ शब्दों में उसे अस्वीकार करते हुए उत्तर दिया "तुम्हें भी इतनी बड़ी रकम मुफ्त में लेने से इंकार करने वाले कम ही मिलेंगे।" उनकी अविचल ईमानदारी और दृढ़ता को देखकर आगंतुक सन्न रह गया और जैसे आया था उल्टे पैर उसी प्रकार लौट गया।

मुंशी प्रेमचंद अंग्रेजी शासन काल में ही एक प्रसिद्ध उपन्यासकार के रूप में प्रख्यात हो चुके थे। अपनी लेखनी द्वारा वे देशभक्ति की भावना जगाने के लिए प्रयास कर रहे थे। अंग्रेजी सरकार की यह नीति थी कि जैसे भी बने विद्वानों, प्रतिभावानों को सरकार का समर्थक बना लिया जाय। इसके लिए नौकरी, पद, प्रतिष्ठा के प्रलोभन देने के अनेकानेक जाल-जंजाल बुने जाते थे। डर था कि प्रेमचंद की लेखनी भी भारतीयों में विद्रोह भड़काने का कारण न बन जाए। तात्कालिक उत्तर प्रदेश के गवर्नर सरमालकम हेली ने मुंशी प्रेमचंद को अपनी ओर मिलाने के लिए एक चाल चली। 'राय साहब'--का खिताब उन दिनों सर्वोच्च राजकीय सम्मान का विषय माना जाता था। कितने ही विद्वान प्रतिभावान किंतु मनोबल के कमजोर व्यक्ति इस खिताब को अपना सम्मान समझते थे। खिताब क्यों दिया जा रहा है, मुंशी जी को समझते देर न लगी। तब तक बड़ी रकम के साथ खिताब श्री प्रेमचंद के घर पर एक अंग्रेज अधिकारी द्वारा यह कहकर पहुँचाया जा चुका था कि माननीय गवर्नर ने उनकी रचनाओं से प्रभावित होकर यह उपहार भेजा है।

घर पहुँचने पर मुंशी जी को खिताब एवं मोटी रकम की बात मालूम हुई। पत्नी ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की इस बात के लिए कि आर्थिक विपन्नता की स्थितियों में एक सहारा मिल गया। पर प्रेमचंद ने दुःख व्यक्त करते हुए कहा "एक देश भक्त की पत्नी होते हुए तुमने

यह प्रलोभन स्वीकार कर लिया यह मेरे लिए शर्म की बात है।" तुरंत रकम और खिताब को लेकर गवर्नर महोदय के पास पहुँचे। दोनों को वापस लौटाते हुए बोले "सहानुभूति के लिए धन्यवाद। आपकी भेंट मुझे स्वीकार नहीं। धन और प्रतिष्ठा की अपेक्षा मुझे देश भक्ति अधिक प्यारी है। आपका उपहार लेकर मैं देशद्रोही नहीं कहलाना चाहता।"

❑ ❑

ईमानदारी विवेक की कसौटी पर

अनीति का तुरंत लाभ मिलते देखकर प्रत्यक्षवादियों का कहना है कि ईमानदारी क्यों अपनाई जाए—उत्कृष्टता का समर्थन क्यों किया जाए ? इससे तत्काल तो घाटा ही दीखता है. फिर क्यों न उस रास्ते पर चला जाए जिससे कम समय एवं श्रम में अधिक लाभ पहुँचता हो। यह मान्यता एकांगी, अधूरी एवं अविवेकपूर्ण है। दूरगामी एवं स्थायी परिणामों पर ध्यान दिया जाए तो स्पष्ट होगा कि उत्कृष्टता के पक्षधर हर क्षेत्र में प्रत्यक्षवादियों—अनीति के मार्ग पर चलकर तात्कालिक लाभ सोचने वालों की तुलना में कहीं अधिक सफल रहे हैं। भौतिक अथवा आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में सफलता के शिखर पर पहुँचने वाले व्यक्ति उत्कृष्टता के न केवल समर्थक रहे वरन् अपने प्रत्येक क्रिया-कलाप में—व्यवहार में उसका समावेश किया।

नीति के मार्ग पर चलने वालों को अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ, मनोयोग एवं धैर्य तीनों की आवश्यकता पड़ती है। असफलताएँ नीति के अवलंबन के कारण नहीं प्रस्तुत होती हैं। बल्कि उनके मूल में इन तीनों का अभाव ही प्रधान कारण होता है। जिन्हें भौतिक संपन्नता ही अभीष्ट हो वे भी नीति पर चलते हुए श्रमशीलता, मनोयोग एवं धैर्य का आश्रय लेकर अपने उद्देश्य में सफल हो सकते हैं। भौतिक संपन्नता में ईमानदारी बाधक सिद्ध होती है, यह मान्यता उन लोगों की है जो पुरुषार्थ से जी चुराते हैं। ऐन केन प्रकारेण कम

समय एवं कम श्रम में अधिक लाभ उठाने की प्रवृत्ति से ही अनीति को प्रोत्साहन मिलता तथा लंबे समय तक सफलता के लिए इंतजार करते नहीं बनता है। फलतः थोड़ा तात्कालिक लाभ भले ही उठा लें—महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों से सदा वंचित ही बने रहते हैं। देखा जाए तो भौतिक संपन्नता के क्षेत्र में शिखर पर वही पहुँचे हैं जो नीति के—ईमानदारी के समर्थक रहे हैं—पुरुषार्थी रहे हैं। विश्व के मूर्धन्य भौतिक संपन्न व्यक्तियों के जीवन क्रम पर दृष्टिपात करने पर यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है। ईमानदारी, पुरुषार्थ के—मनोयोग एवं असीम धैर्य के सहारे ही वे सामान्य स्तर से असामान्य स्थिति तक जा पहुँचे।

अमेरिका के प्रसिद्ध पूँजीपति राकफेलर ने एक छोटे-से व्यापारी के रूप में अपना जीवन आरंभ किया। घर की स्थिति ऐसी नहीं थी कि व्यापार में पूँजी का योगदान मिल सके। पर अपनी प्रामाणिकता, गहन अभिरुचि एवं नम्रता के कारण एक मित्र से इतना सहयोग प्राप्त करने में सफल हो गए कि किसी प्रकार छोटा-मोटा व्यवसाय आरंभ हो सके। लगन, पुरुषार्थ के कारण वे आगे बढ़ते गए। प्रामाणिकता के कारण उन्हें कर्ज के रूप में अन्य बड़े व्यापारियों का भी योगदान मिलने लगा। निर्धारित समय पर उधार का पैसा मिल जाने के कारण राकफेलर की प्रामाणिकता व्यवसाय क्षेत्र में बढ़ती गई। अपनी श्रमशीलता, असाधारण मनोयोग एवं चरित्रनिष्ठा के कारण राकफ़ेलर का नाम इन दिनों यूरोप के मूर्धन्य संपन्नों में गिना जाता है। राकफेलर की 'एक्सन' एवं स्टेंडर्ड तेल कंपनियाँ आज संसार के सबसे बड़े ५०० निगमों में से एक गिनी जाती हैं। एक प्रेस इंटरव्यू में अपनी सफलता का रहस्योद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा कि "विषम परिस्थितियों, असफलताओं में भी हमने अपना धैर्य कभी नहीं खोया। अपनी प्रामाणिकता पर कभी आँच नहीं आने दिया। अपने ऊपर आत्म-विश्वास बना रहा। यह हमारी सफलता का रहस्य है।"

कितने ही व्यक्ति संपन्न बनना चाहते हैं, अभीष्ट लक्ष्य के प्रति आरंभिक उत्साह भी रहता है, पर छोटी-मोटी असफलताओं के कारण प्रयास छोड़ बैठते हैं। इतना धैर्य नहीं रहता कि असफलता से प्रेरणा लें—कारणों की ढूँढ़ खोज करें तथा नए सिरे से प्रयत्न आरंभ कर दें। अप्रामाणिकता भी असफलता का कारण बनती है। झूठ फरेब के

बलबूते थोड़ा लाभ आरंभ में उठाया तो जा सकता है पर जन-सामान्य को मालूम पड़ जाने पर विश्वास समाप्त हो जाता है तथा वह व्यक्ति सहयोग से वंचित रह जाता है। अनीति पूर्वक सफलताएँ प्राप्त करने के इच्छुक अंततः घाटे में ही रहते हैं। महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ तो ईमानदार, श्रमशील व्यक्ति के ही हिस्से में आती हैं।

एक युवक ने जब हैनरी फोर्ड से कहा कि "मैं भी हेनरी फोर्ड के समान संपन्न बनना चाहता हूँ। कृपया मेरा मार्गदर्शन कीजिए।" हैनरी फोर्ड ने जो उत्तर दिया "वह हर भौतिक महत्त्वाकांक्षी को प्रेरणा दे सकता है।" फोर्ड ने उत्तर दिया, 'किसी भी कीमत पर अपनी प्रामाणिकता बनाए रखो, मनोयोग एवं सतत् श्रम का अवलंबन लेकर व्यवसाय क्षेत्र में आगे बढ़ सकते हो।' एक सामान्य से ओटोमोबाइल मैकेनिक के रूप में फोर्ड ने अपने जीवन क्रम का आरंभ किया तथा पुरुषार्थ के सहारे सफलता की चोटी पर जा पहुँचे। फोर्ड को ओटोमोबाइल उद्योग का संस्थापक माना जाता है। मोटर कारखाना की स्थापना के समय उनकी इच्छा थी कि इतनी सस्ती कारों का निर्माण करें कि प्रत्येक कर्मचारी को उपलब्ध हो सके। सन् १६३० में फोर्ड कंपनी से निकलने वाली कार की कीमत मात्र ३०० डालर थी। फोर्ड कंपनी के सामने हर समय ७०,००० कारें खड़ी रहती थीं जो मात्र कंपनी में कार्य करने वाले कर्मचारियों की थीं, सन् १६३७ में मृत्यु के समय हेनरी विश्व के सबसे संपन्न व्यक्ति माने गए। फोर्ड शांति के पक्षपाती थे। उन्होंने फोर्ड फाउंडेशन की स्थापना द्वारा अपने करुण हृदय का परिचय दिया। खरबों डालर की राशि से स्थापित यह संस्था मानवतावादी कार्यों में लगी है।

अमेरिका के ही जान जैकोव एस्टर को कितनी ही असफलताओं का सामना करना पड़ा, पर कभी भी उन्होंने संतुलन नहीं खोया। परिश्रम, ईमानदारी के लिए अटूट निष्ठा ने उन्हें अमेरिका के मूर्धन्य पूँजीपतियों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। लंबी-चौड़ी योजनाएँ बनाने की अपेक्षा उन्होंने व्यवसाय के क्षेत्र में एक सामान्य से व्यापारी के रूप में चाय एवं चंदन खरीदने-बेचने का कार्य छोटे पैमाने पर आरंभ किया। व्यापारिक क्षेत्र में अपनी ईमानदारी के कारण वे सदा विख्यात रहे। फलतः जन-सहयोग भी

मिला। इस छोटे-से व्यापार से एस्टर ने क्रमिक विकास करते हुए अमेरिका में बहुत बड़ा व्यापारिक साम्राज्य स्थापित कर लिया। व्यापार का विस्तार होते देखकर उन्होंने न्यूयार्क का एक बड़ा भाग खरीद लिया तथा नियंत्रण के लिए स्थायी केंद्र की स्थापना की। इन दिनों अनेक देशों में उनका व्यवसाय फैला है।

ब्रिटेन का प्रसिद्ध कार निर्माता न्यूफील्ड एक सामान्य मैकेनिक था। अपनी श्रमशीलता, लगन एवं प्रामाणिकता के कारण वह ब्रिटेन का सबसे बड़ा कार निर्माता बना। न्यूफील्ड का कहना है, कि अपने भाग्य का निर्माण हमने पुरुषार्थ एवं चरित्रनिष्ठा के आधार पर किया है। असफलताओं से भी प्रेरणा लेकर मैं अपने लक्ष्य की ओर सतत् तत्पर रहा। फलतः वर्तमान स्थिति तक पहुँच सका हूँ।'

लंबी-चौड़ी योजनाएँ बनाने की अपेक्षा अपने पास मौजूद साधनों को लेकर ही छोटे-मोटे कार्यों में जुट जाया जाए तो भी प्रगति का सशक्त आधार बन सकता है। परिस्थितियाँ अनुकूल होंगी—साधनों का बाहुल्य होगा, तब व्यवसाय आरंभ करेंगे, यह सोचते रहने की तुलना में अपने अल्प साधनों को लेकर काम में जुट जाना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। काम छोटा हो अथवा बड़ा उसमें सफलता के कारण साधन नहीं अथक पुरुषार्थ, लगन एवं प्रामाणिकता बनते हैं। देखा जाए तो विश्व के सभी मूर्धन्य संपन्न सामान्य स्थिति से उठकर असामान्य तक पहुँचे। साधन एवं परिस्थितियाँ तो प्रतिकूल ही थीं, पर अपनी श्रमनिष्ठा एवं मनोयोग के सहारे सफलता के शिखर पर जा चढ़े। वे यदि परिस्थितियों का रोना रोते रहते तो अन्य व्यक्तियों के समान ही हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते और संपन्न बनने की कल्पना में मन बहलाते रहते।

बाटा एक सामान्य मोची था। पैतृक संपत्ति के रूप में उसे जूते बनाने की कला प्राप्त हुई। जिस तल्लीनता के साथ वह जूते की मरम्मत करता था वह देखते बनती थी। अपने काम एवं मजदूरी के प्रति इतना ईमानदार था कि ग्राहकों का ताँता लगा रहता था। उचित मजदूरी एवं निश्चित समय पर ग्राहकों को जूते मरम्मत करके देना उसकी विशेषता थी। इस लगन एवं प्रामाणिकता के कारण ही उसकी ख्याति हुई। व्यवसाय बढ़ने लगा। कार्य के विस्तार को देखते हुए

उसे अन्य सहयोगी रखने पड़े और अंततः कंपनी का रूप देना पड़ा। "बाटा शू कंपनी" आज अपनी प्रामाणिकता के कारण विश्व विख्यात है। गई-गुजरी स्थिति से उठकर अरबपति की श्रेणी में जा पहुँचने वाले विश्व विख्यात 'बाटा शू कंपनी' के निर्माता का जीवन वृत्तांत भौतिक संपन्नता प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों को प्रेरणा दे सकता है।

गली-गली में जाकर दैनिक उपयोगी छोटे-छोटे सामान बेचने वाले 'बिरला' किस प्रकार भारत के मूर्धन्य व्यवसायी बने, इस रहस्य को जानने के इच्छुक व्यक्तियों को उनके खर्च, व्यवसाय, विस्तार को नहीं उन विशेषताओं का अध्ययन करना होगा जिनके बलबूते वे वैभव के स्वामी बने। उनकी श्रमनिष्ठा एवं प्रामाणिकता उल्लेखनीय थी। असफलताओं में भी उन्होंने निराशा को पास नहीं फटकने दिया। चरित्रनिष्ठा पर आँच नहीं आने दी। फलस्वरूप व्यवसाय फूलता फैलता गया। संपूर्ण भारत में इन दिनों बिरला का व्यवसाय छाया हुआ है।

बेईमानी की गरिमा स्वीकारने तथा आदर्श के रूप से अपनाने वाले वस्तुतः वस्तु स्थिति का बारीकी से विश्लेषण नहीं कर पाते। वे बुद्धि भ्रम से ग्रसित हैं। सच तो यह है, बेईमानी से धन कमाया ही नहीं जा सकता। इस आड़ में कमा भी लिया जाए तो वह स्थिर नहीं रह सकता। लोग जिन गुणों से कमाते हैं, वे दूसरे ही हैं। साहस, सूझ-बूझ, मधुर भाषण, व्यवस्था, व्यवहारकुशलता आदि वे गुण हैं जो उपार्जन का कारण बनते हैं। बेईमानी से अनुपयुक्त रूप से अर्जित किए गए लाभ का परिणाम स्थिर नहीं और अंततः दुःखदायी ही सिद्ध होता है। ऐसे व्यक्ति यदि किसी प्रकार राजदंड से बच भी जाएँ तो भी उन्हें अपयश, अविश्वास, घृणा, असहयोग जैसे सामाजिक और आत्म प्रताड़ना तथा आत्म ग्लानि जैसे आत्मिक कोप का भाजन अंततः बनना पड़ता है। बेईमानी से भी कमाई तभी होती है जब उस पर ईमानदारी का आवरण चढ़ा हो। किसी को ठगा तभी जा सकता है जब उसे अपनी प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता पर आश्वस्त कर दिया जाए। यदि किसी को यह संदेह हो जाए कि हमें ठगने का ताना बाना बुना जा रहा है तो वह उस जाल में नहीं फँसेगा तथा दूसरे को अपनी धूर्तता का लाभ नहीं मिल सकेगा। बेईमानी की चाल तभी सफल होती है जब वह ईमानदारी के आवरण में पूरी तरह

ढँक जाए—कहीं कोई किसी तरह के संदेह की गुंजायश ही न रहे। वास्तविकता प्रकट होने पर तो बेईमानी करने वाला न केवल उस समय के लिए वरन् सदा के लिए लोगों का अपने प्रति विश्वास खो बैठता है और लाभ कमाने के स्थान पर उल्टा घाटा उठाता है। रिश्वत लेते, मिलावट करते, धोखाधड़ी बरतते, सरकारी टैक्स हड़पते काला बाजारी करते पकड़े जाने वाले सरकारी दंड पाते तथा समाज में अपनी प्रतिष्ठा गँवाते आए दिन देखे जाते हैं। उनकी असलियत प्रकट होते ही हर व्यक्ति घृणा करने लगता है।

हर व्यक्ति ईमानदार साथी चाहता है। उसके साथ ईमानदारी बरती जाए वह अपेक्षा करता है। ईमानदार नौकर, कर्मचारी, व्यवसायी, दुकानदार की सर्वत्र ढूँढ़ खोज होती है, बाजार में लोग उन्हीं दुकानों पर जाते हैं जिनकी प्रामाणिकता पर विश्वास होता है। नौकरी उन्हें ही मिलती है। जिनकी ईमानदारी पर शक न हो। कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता कि उसे धोखा दिया जाए—ठगा जाए। ढूँढ़ खोज की जाए तो कोई भी बेईमानी का समर्थक नहीं मिलेगा। संसार में बड़े काम, बड़े व्यापार, बड़े आयोजन ईमानदारी के आधार पर ही बढ़े और सफल हुए हैं। जिसने अपनी विश्वस्तता का सिक्का दूसरों पर जमा दिया—अच्छी सही खरी चीजें उचित मूल्य पर दीं और व्यवहार में प्रामाणिकता सिद्ध कर दी, लोग सदा सर्वदा के लिए उसके ग्राहक, प्रशंसक एवं सहयोगी बन गए। प्रामाणिकता का भविष्य सदा से ही उज्ज्वल रहा है।

बेईमानी कुछ स्थायी लाभ दे सकती है, यह संदिग्ध है। सफलता भी नहीं मिलती है जहाँ उसे ईमानदारी का जामा पहना दिया जाता है। दूध में पानी और घी में वेजीटेबिल मिलाने वाला तभी तक सफल है जब तक वह कसम खा-खाकर अपनी ईमानदारी और चीज के असलीपन का विश्वास दिलाता रहे। यह वस्तुतः प्रामाणिकता और विश्वास की उपलब्धि है। ऐसे दुकानदार व्यवसायी अपने वस्तु दोषों को प्रकट कर दें तो पता चलेगा कि बेईमानी अपने विशुद्ध रूप में कुछ कमा सकने में सर्वथा असमर्थ है। एच० एम० टी० फॉवरल्युवा, सीको कंपनी की घड़ियों, फोर्ड की मोटरें, बाटा के जूते, पार्कर के पेन महँगे होते हुए भी लोग उन्हें प्रसन्नतापूर्वक खरीदते हैं। कारण कि इन कंपनियों में बनी वस्तुओं पर हर कोई भरोसा करता

है, इनके व्यापार का दिन-प्रतिदिन विस्तार होता जा रहा है। जापानी व स्विस घड़ियाँ, ट्रांजिस्टर, मोटर पार्टस्, कलात्मक वस्तुएँ आज विश्व भर में लोकप्रिय हैं। इन चीजों की सर्वाधिक मांग संसार भर में है। इसके विपरीत आए दिन नकली, कमजोर और घटिया वस्तुएँ बनाने वाली कंपनियों का दिवाला निकलता रहता है। पूँजी नष्ट होती है तथा निर्माता बदनामी के कारण नया काम कर सकने में भी सफल नहीं हो पाते।

व्यापार ही नहीं जीवन के हर क्षेत्र की सफलता का स्थायित्व कठोर श्रम, ईमानदारी, सच्चाई एवं प्रामाणिकता पर निर्भर है। चालाकी से ठगकर कुछ अर्जित भी कर लिया जाए तो भी वह स्थिर नहीं रह पाता। या ऐसा उपार्जन अपने साथ अनेक प्रकार के संकट लेकर प्रकारांतर से भविष्य में प्रस्तुत होता है। चोर उठाईगीरे, डाकू, जुआरी, गिरहकट अल्प अवधि में पैसा तो बहुत कमा लेते हैं। पर उस कमाई का सदुपयोग नहीं बन पड़ता। अनीति युक्त उपार्जन अपव्यय दुर्व्यसन की दुष्प्रवृत्तियों को ही अंततः बढ़ावा देता है। ऐसी कमाई जिस भी घर में आती है सदस्यों को दुर्गुणी, कुसंस्कारी और दुर्व्यसनी बनाती है। मेहनत से जी चुराने तथा अनीति का अवलंबन लेकर अधिक कमाई करने वालों के बच्चे भी आलसी, प्रमादी और निठल्ले बनते हैं। श्रम का महत्त्व न समझने के कारण वे प्रायः जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण काम नहीं कर पाते।

थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाए कि ईमानदारी से बेईमानी की तुलना में कमाई कम होती है तो भी अपनी चिरस्थायी विशेषताओं के कारण आर्थिक दृष्टिकोण से भी ईमानदारी का अवलंबन ही श्रेयस्कर है। पसीने की कमाई ही फलती फूलती है, हराम का पैसा पानी के बबूले की तरह नष्ट हो जाता है। अपने साथ पश्चाताप, संताप और अपयश छोड़ जाता है। यदि बेईमानी से अधिक उपार्जन होता भी हो तो आवश्यक नहीं कि धनवान सेठ बन जाए। धन की तुलना में सद्गुणों की पूँजी कहीं अधिक मूल्यवान है। धन ही सब कुछ होता तो महापुरुष सद्गुणों की संपदा एकत्रित करने में अपने जीवन को क्यों खपाते ? त्याग बलिदान का आदर्श क्यों प्रस्तुत करते ? अपनी प्रामाणिकता अक्षुण्ण रखने के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी क्यों देते। स्पष्ट है कि नीति पर चलने से मिलने

वाला आंतरिक संतोष, लोक श्रद्धा एवं सम्मान धन की तुलना में कहीं अधिक कीमती और स्थायी है। जिसे पाने के लिए विपुल संपदा को भी न्यौछावर किया जा सकता है।

बेईमानी को उन्नति के आदर्श के रूप में स्वीकार कर लेने से न तो व्यक्ति की प्रगति संभव है और न ही समाज की। इस प्रचलित भ्रांत धारणा को कि ईमानदारी घाटे का सौदा है तथा बेईमानी लाभ का—जितना शीघ्र निरस्त किया जा सके, उतना ही श्रेयस्कर है।

❐ ❐

सफलताओं का मूलभूत आधार—लगन एवं उत्कट अभिलाषा

ईसा मसीह ने अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा है, 'जो द्वार खटखटाएगा उसके लिए दरवाजा खोला जाएगा और जो माँगेगा वह दिया जाएगा।' इस उक्ति में आध्यात्मिक और भौतिक जीवन के, संपूर्ण क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने का अचूक रहस्य उद्घाटित किया गया है। सफलता का द्वार खटखटाने का अर्थ है उसे प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प और मांगने पर मिलने का अर्थ पूरी शक्ति के साथ अपनी शक्तियों का उपयोग। स्मरणीय है सफलताएँ भौतिक हों अथवा आध्यात्मिक, उन्हें प्राप्त करने के लिए कोई बाहरी साधनों की आवश्यकता नहीं पड़ती, मूल आवश्यकता तो अपनी आंतरिक शक्तियों को जाग्रत करने तथा उन्हें सक्रिय बनाने की होती है। बाहरी साधन और उपकरण भी आवश्यक होते हैं, पर वे एक सीमा तक ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। यदि उनका ठीक प्रकार से उपयोग करने की कला न आती हो, संकल्प, साहस और पुरुषार्थ न किया जाए तो वे साधन एक तरह निरर्थक और व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं। मनुष्य जिस प्रकार की इच्छा करता है, हृदय से पूरे प्राण से जो संकल्प करता है उसी के अनुरूप परिस्थितियाँ उसके निकट एकत्रित होने लगती हैं। इस इच्छा या संकल्प को एक प्रकार का चुंबक कहा जा सकता है, जिसके आकर्षण से अनुकूल शक्तियाँ खिंची जाती हैं। जहाँ गड्ढा

होता है वहाँ चारों ओर से वर्षा का पानी बहता हुआ सिमट जाता है और गड्ढा भर जाता है, लेकिन जहाँ ऊँचा टीला है वहाँ भारी वर्षा होने पर भी पानी नहीं ठहरता। इच्छा और संकल्प एक प्रकार का गड्ढा है जिसमें सब ओर से अनुकूल स्थितियाँ खिंच-खिंच कर चली आती हैं।

प्रश्न उठता है सफलता और सुख-शांति की इच्छा तो सभी करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति उन्नति करना और आगे बढ़ना चाहता है, फिर सभी की इच्छाएँ पूरी क्यों नहीं होतीं ? इस प्रश्न का समाधान खोजने के लिए एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। पैर में काँटा चुभता है और पीड़ा होती है, तो मनुष्य सभी काम छोड़कर अपना पूरा ध्यान उस काँटे को निकालने में लगा देता है। उसे तब तक चैन नहीं आता ज़ब तक कि पैर से काँटा नहीं निकल जाए। इच्छा या आकांक्षा का यही वास्तविक स्वरूप है। सुख-शांति से सभी रहना चाहते हैं, प्रगति और उन्नति करने की आकांक्षा हर कोई करता है, पर कितने व्यक्ति हैं जो इन इच्छाओं को पूरा करने के लिए समग्र तत्परता से प्रयत्न करते हैं। स्पष्ट है कि जिन्हें इच्छा या आकांक्षा कहा जाता है वे सतही स्तर की होती हैं। यदि पूरे मन और प्राण से इच्छा की जाती है, वर्तमान परिस्थितियाँ शूल की तरह चुभती हैं तो उन्हें दूर करने के लिए भी उसी स्तर की तत्परता होनी चाहिए।

इस स्तर की इच्छा जहाँ भी रहेगी वहाँ अभिरुचि, मनोयोग और आवश्यक साधन जुटाने के लिए समस्त शक्तियाँ सक्रिय हो उठेंगी। इसके विपरीत सतही इच्छाएँ तथा आकांक्षाओं की कमी रहने पर विभूतियाँ प्राप्त नहीं हो सकेंगी। स्मरण रखा जाना चाहिए कि मन में जो इच्छा प्रधान रूप से काम करती है, उसे पूरा करने के लिए शरीर की समस्त शक्तियाँ काम करने लगती हैं। निर्णय शक्ति, निरीक्षण शक्ति, अन्वेषण, चिंतन और कल्पना आदि मस्तिष्क की सभी शक्तियाँ उसी दिशा में सक्रिय हो जाती हैं और तब एक जीवित चुंबकत्व तैयार हो जाता है। जिस प्रकार चुंबक को कूड़े कचरे में भी फिराया जाए तो धातुओं के इधर-उधर बिखरे हुए टुकड़े उससे चिपक जाते हैं उसी प्रकार विशिष्ट आकांक्षाएँ मन में उत्पन्न होती हैं तो व्यक्ति की जाग्रत शक्तियाँ उन सभी तथ्यों को ढूँढ और प्राप्त कर लेती हैं जो सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं।

ईसा मसीह के उक्त कथन का यही रहस्य है कि खटखटाने पर द्वार खुलता है और माँगने पर मिलता है अर्थात् आकांक्षा उत्कट और बलवती होनी चाहिए। उत्कट और बलवती आकांक्षा मनुष्य में वह तत्परता उत्पन्न करती है जो प्रत्येक क्षेत्र में अवरोधों को चीरती, रुकावटों को हटाती और बाधाओं को मिटाती अभीष्ट दिशा में बढ़ती जाती है। तत्परता के बल पर ही किसी भी क्षेत्र में सफल हुआ जा सकता है, क्योंकि उसके द्वारा प्रेरित क्रियाशीलता अभीष्ट शक्ति संपादित कराती है और यह सुविदित है कि सक्रियता अथवा निरंतर अभ्यास से पूरे शरीर को या उसके किसी भी अंग को अथवा व्यक्तित्व के किसी भी पक्ष को बलवान बनाया जा सकता है। लुहार का दाहिना हाथ अपेक्षाकृत अधिक मज़बूत होता है, क्योंकि अधिक काम में आने के कारण उसकी क्षमता बढ़ी हुई रहती है। पैदल चलने के अभ्यासी लोगों की रागें मजबूत पाई जाती हैं। नफीरी बजाने वालों के गलफड़े फेफड़े दूसरे लोगों की तुलना में अधिक पुष्ट होते हैं। इसका एक मात्र कारण उन अंगों की क्रियाशीलता ही है।

उत्कट आकांक्षा और तज्जन्य तत्पर क्रियाशीलता के बल पर कितने ही लोगों ने विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति की है। दुबले-पतले शरीर वाले कितने ही लोगों ने बलवान बनने की उत्कट आकांक्षा से प्रेरित होकर व्यायाम, आहार, बिहार, संयम, नियम का पालन कर अपने को उच्च श्रेणी का बलवान तथा पहलवान बना लिया। विश्व विख्यात पहलवान सैंडो बचपन में बहुत दुबला पतला और प्रायः बीमार रहा करता था। परंतु जब उसमें बलवान बनने की भावना जागी और इसके लिए नियमित रूप से व्यायाम करने के साथ-साथ आहार-विहार का संयम अपनाया तो उसने अपनी पहलवानी की धाक सारे संसार में जमा दी। भारत के माने हुए पहलवान मास्टर चंदगीराम २१ वर्ष की आयु तक जुकाम, सर्दी, बुखार आदि रोगों से इस बुरी तरह ग्रस्त रहते थे कि उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया था। चलते-फिरते उन्हें चक्कर आने लगते। किंतु जब उन्होंने अपना ध्यान शारीरिक बल वृद्धि पर केंद्रित किया और व्यायाम, कसरत करने लगे तो फिर शरीर का काया-कल्प ही हो गया। ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं जो मनुष्य की उत्कट आकांक्षा,

एकाग्रता, लगन और तत्परता के समन्वय द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

मस्तिष्क की स्मरण शक्ति और वृद्धि प्रखरता बढ़ाने में इंग्लैंड के डब्ल्यू० जे० एम० बाटन की कोई सानी नहीं रखता। इंग्लैंड के केंट कस्बे में जन्मा बाटन आरंभ में इतना मंदबुद्धि था कि उसे पढ़ी हुई कोई बात याद नहीं रहती। कमजोर भी काफी था और कमजोरी, बीमारी के कारण उसे ११ वर्ष की आयु में ही स्कूल छोड़ देना पड़ा। अब मस्तिष्क या बुद्धि के विकास की क्या कल्पना या आशा की जा सकती थी। लेकिन इस स्थिति में भी बाटन ने अपने पिता की प्रेरणा से मनोरंजन का एक शौक बढ़ाया। वह इधर-उधर की बातें याद कर लेता और उनका स्थान, समय, घटना क्रम आदि का ठीक-ठीक विवरण बताकर लोगों पर अपनी स्मरण शक्ति का रौब जमाता।

धीरे-धीरे उसने अपनी स्मरण शक्ति को इतना अधिक विकसित कर लिया कि वह चलता फिरता विश्व कोश समझा जाने लगा। यह अभ्यास उसने इस लक्ष्य के प्रति गाँठ-बाँधकर किया कि उसे अपनी याददास्त को बढ़ाना है। पूरी तत्परता के साथ इस दिशा में लगे रहने के बाद उसने अपनी याददास्त को इतना तेज कर लिया कि उसकी ख्याति चारों दिशाओं में फैलने लगी। एक बार उससे यूरोप के प्रमुख ज्योतिषियों, राजनीतिज्ञों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने ऐसी घटनाओं के विवरण पूछे जो विस्मृति के गर्त में गुम गए ही प्रतीत होते थे, पर उसने पूछी गई सारी घटनाओं को सिलसिलेवार सन्, तारीख सहित इस प्रकार बताया कि पूछने वालों को आश्चर्य चकित रह जाना पड़ा। बाटन अपने समय में इतना प्रसिद्ध हो गया था कि उसकी मृत्यु के बाद अमेरिका के एक स्वास्थ्य संस्थान ने उसका सिर १० हजार डालर में खरीदा ताकि उसकी मस्तिष्कीय विलक्षणताओं का रहस्य मालूम किया जा सके।

इच्छा शक्ति का केंन्द्रीकरण तथा पूरी तत्परता के साथ प्रयत्नशील रहना ही वह आधार है जिसके बल पर इच्छित उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। मनुष्य उन्हीं वस्तुओं अथवा उपलब्धियों को प्राप्त कर सकता है जिनके लिए वह आग्रहपूर्वक प्रयत्न करता है। अगर किसी लक्ष्य विशेष का निर्धारण न कर काम

किया जाए तो उसका परिणाम भी शून्य या नगण्य ही रहेगा और कहना नहीं होगा कि लक्ष्य का निर्धारण तभी होता है जब मन में किसी विशिष्ट आकांक्षा का निवास हो और उसे प्राप्त करने के लिए तत्परता के स्तर की व्यग्रता हो। अनेक जीव-जंतु कीट पतंगे फूलों के आस-पास घूमते रहते हैं, पर उनमें से केवल मधुमक्खी ही शहद निकालती है, क्योंकि उसे मधु प्राप्त करने की आकांक्षा और व्यग्रता रहती है। उस संबंध में ब्रिटेन के प्रसिद्ध विचारक कार्लायल का कथन है कि एक ही विषय पर अपनी शक्तियों को एकाग्र करने से कमजोर व्यक्ति भी बहुत कुछ कर सकता है, जबकि बलवान व्यक्ति भी यदि अपनी शक्तियों को कई दिशाओं में बिखेर देता है तो वह बलवान होते हुए भी कुछ नहीं कर सकता। एक-एक बूँद पानी अगर एक ही स्थान पर निरंतर पड़ता रहे तो कड़े-से-कड़े पत्थर में भी छेद हो जाता है लेकिन यदि पानी का बड़ा भारी बहाव भी शीघ्रतापूर्वक उसके ऊपर से निकल जाए तो उसका नाम-निशान भी उस पर नहीं दिखाई पड़ता।

अंग्रेजी भाषा में प्रख्यात साहित्यकार बुल्वर लिटन शौकिया तौर पर ही लिखा करते थे लेकिन उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह इतना श्रेष्ठ था कि उसके कारण लिटन की गणना अंग्रेजी के अग्रणी लेखकों में की जाती है। एक बार किसी ने उनसे इसका रहस्य पूछा तो लिटन ने कहा कि "मैं कभी शीघ्रतापूर्वक बहुत अधिक काम कर डालने की कोशिश नहीं करता बल्कि उसे उत्तम रीति से करना ही ज्यादा पसंद करता हूँ। अगर आज अपनी शक्ति से अधिक काम कर डाला जाए तो कल तक थकान आ जाएगी और फिर थोड़ा-सा काम भी ठीक ढंग से नहीं हो सकेगा। जब मैंने कालेज छोड़ा और सांसारिक कामों में पड़ा तो उसके पहले वास्तव में मैंने ऐसे कामों का कोई अध्ययन नहीं किया था। लेकिन इसके बाद मैं पढ़ने लगा और मेरा विश्वास है कि मैंने सामान्य लोगों से कम नहीं पढ़ा। मैंने बहुत-सी दूर-दूर देशों की यात्राएँ कीं, राजनीति में भाग लिया और उद्योग धंधों में भी समय बिताया। फिर भी साठ से अधिक किताबें लिख डालीं। आपको विश्वास नहीं होगा कि मैंने इस पढ़ने-लिखने में कभी तीन घंटे से अधिक समय खर्च नहीं किया। लेकिन इन तीन

घंटों में जो भी पढ़ता-लिखता था वह पूरी एकाग्रता, तन्मयता और तत्परता के साथ।'

सफलता का मूलभूत आधार उत्कट इच्छा, तत्पर सक्रियता और क्रियाशीलता ही है। इसके बिना कोई भी व्यक्ति ऊँचा नहीं उठ सकता है और कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं प्राप्त कर पाता है। तत्परता, तन्मयता, सक्रियता और मनोयोग के मूल में भी उत्कट आकांक्षा ही उत्प्रेरक काम करती है। यद्यपि सुख-दुःख भली-बुरी परिस्थितियाँ और उत्थान पतन का मुख्य कारण मनुष्य का कर्म समझा जाता है। लेकिन कर्म रूप वृक्ष भी तो विचार और इच्छा रूपी बीज से ही उत्पन्न होता है, इच्छा से प्रेरणा की और प्रेरणा से कर्म की उत्पत्ति होती है।

मनुष्य अपनी आकांक्षा के अनुरूप सोचता है और जैसा वह सोचता है वैसे ही साधन उपलब्ध करता है। जैसे साधन उपलब्ध होते हैं वैसा ही कर्म वह करने लगता है। जैसे कर्म किए जाते हैं वैसी ही परिस्थितियाँ सामने आ खड़ी होती है और उसी तरह के परिणाम प्रस्तुत करती हैं। इसे भाग्य, कर्मों का फल, किस्मत जो चाहे नाम दे दिया जाए, पर सच्चाई यह है कि यह सब अपनी ही इच्छाओं की परिणति और फलश्रुति है। जो चाहा जाता है वही प्राप्त होता। इसलिए कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता और तकदीर का लेखक स्वयं है। संसार में जितने भी व्यक्तियों ने सफलताएँ प्राप्त की हैं उन्होंने अपने प्राप्तव्य के लिए पूरे मन से अभिलाषा की है और वे इस बात के लिए तड़पते, बेचैन होते रहे हैं कि किस प्रकार अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त की जाए। इस आकांक्षा और तड़प ने ही उन्हें क्रियाशील बनाया तथा समस्त बाधाओं से जूझते हुए, असफलताओं की घड़ी में भी आशान्वित रहते और पराजय के बाद भी नए प्रयत्न करते रहकर अंत में अपने अभीष्ट को प्राप्त किया। अस्तु उत्कट आकांक्षा ही एक शब्द में सफलता का मूलभूत आधार कही जा सकती है।

❐ ❐

नियमितता का अभ्यास एक श्रेष्ठ गुण है

विचार दिशा देते हैं, पर सामर्थ्य आदतों से रहती है। वे ही मनुष्य को किसी निर्धारित दिशा में चलने के लिए न केवल प्रेरणा देती हैं वरन् कई बार तो उसे वे अनुरूप करा लेने के लिए विवश तक कर देती हैं भले ही परिस्थितियाँ अनुकूल न हों। नशेबाजी जैसी आदतें इनका उदाहरण हैं। स्वास्थ्य, पैसा, यश आदि की हानियों को समझते हुए भी नशे के आदी मनुष्य नशा करते और उसके दुष्परिणाम भुगतते हैं। छोड़ने की बात सोचते हुए भी वे वैसा कर नहीं पाते। कारण कि विचारों की तुलना में, आदतों की सामर्थ्य अत्यधिक होती है। अनुपयोगी होते हुए भी वे कई बार प्रबल होती हैं कि पूरा करने के अतिरिक्त और कोई चारा दिखाई नहीं पड़ता। भले या बुरे जीवन क्रम में जितना योगदान आदतों का होता है उतना और किसी का नहीं।

आदतें, आसमान से नहीं उतरतीं। विचारों को कार्यान्वित करते रहने का लंबा क्रम चलते रहने पर वह अभ्यास आदत बन जाता है और उसे अपनाए रहने में जितना समय बीतता है, उतना ही वह ढर्रा सुदृढ़ चला जाता है। वह परिपक्वता कालांतर में इतनी गहरी जड़ें जमा लेती है कि उखाड़ने के असामान्य उपाय ही भले सफल हों। सामान्यतया तो वह अभ्यस्त ढर्रा ही जीवनक्रम पर सवार रहता है और उसी पटरी पर गाड़ी लुढ़कती रहती है।

आदतें बनाई जाती हैं, भले ही उनका अभ्यास योजना बनाकर किया गया हो अथवा रुझान, संपर्क, वातावरण परिस्थिति आदि कारणों से अनायास ही बनता चला गया हो। ये आदतें ही मनुष्य का वास्तविक व्यक्तित्व या चरित्र होता है। मनुष्य क्या सोचता है, क्या चाहता है, इसका अधिक मूल्य नहीं। परिणाम तो उन गतिविधियों के ही निकलते हैं जो आदतों के अनुरूप क्रियान्वित होती रहती हैं। प्रतिफल तो कर्म ही उत्पन्न करते हैं और वे कर्म अन्य कारणों के अतिरिक्त प्रधानतया आदतों से प्रेरित होते हैं।

बुरी आदतें अक्सर दूसरों की देखा-देखी या संबद्ध वातावरण के कारण क्रियान्वित होती और स्वभाव का अंग बनती चली जाती हैं। मन का स्वभाव पानी की तरह नीचे की ओर लुढ़कने का है। इन दिनों लोक प्रवाह भी अवांछनीयता का ही पक्षधर बन गया है। दोस्ती गाँठने वाले चमकदार व्यक्तियों में से अधिकांश की आदतें घटिया स्तर की होती हैं। उनके प्रभाव संपर्क से भी वैसा ही अनुकरण चल पड़ता है। इस प्रकार अनायास ही मनुष्य बुरी आदतों का शिकार बनता जाता है। यही है वह चंगुल जिसमें जकड़े हुए लोग हेय जीवन जीते और दुष्प्रवृत्तियों के दुष्परिणाम सहते हैं।

जिस क्रम से आदतें अपनाई जाती हैं, उसी रास्ते उन्हें छोड़ा या बदला जा सकता है। रुझान, संपर्क, वातावरण, अभ्यास आदि बदले जा सके तो कुछ दिन हैरान करने के बाद आदतें बदल भी जाती हैं। कई बार प्रबल मनोबल के सहारे उन्हें संकल्पपूर्वक एवं झटके से भी उखाड़ा जा सकता है। पर ऐसा होता बहुत ही कम है। बाहर की अवांछनीयताओं से जूझने के तो अनेक उपाय हैं, पर आंतरिक दुर्बलताओं से एक बार भी गुथ जाना और उन्हें पछाड़कर ही पीछे हटना किन्हीं मनस्वी लोगों के लिए ही संभव होता है। दुर्बल मन वाले तो छोड़ने पकड़ने, आगे बढ़ने पीछे हटने के कुचक्र में ही फँसे रहते हैं। अभीष्ट परिवर्तन न होने पर उनका दोष जिस तिस पर मढ़ते रहते हैं। किंतु वास्तविकता इतनी ही है कि आत्म परिष्कार के लिए—सत्प्रवृत्तियों के अभ्यस्त बनने के लिए—सुदृढ़ निश्चय के अतिरिक्त और कोई उपाय है नहीं। जिन्हें पिछड़ेपन से उबरने और प्रगतिशील जीवन अपनाने की वास्तविक इच्छा हो उन्हें अपनी आदतों का पर्यवेक्षण करना चाहिए और उनमें से जो अनुपयुक्त हों उन्हें छोड़ने बदलने का सुनिश्चित निर्धारण करना चाहिए। स्वभाग्य निर्माता, प्रगतिशील महामानवों में से प्रत्येक को यही उपाय अपनाना पड़ता है।

अनगढ़ स्थिति में आमतौर से सभी मनुष्य कुसंस्कारी होते हैं। जीव ने क्रमिक विकास के लंबे रास्ते पर चलते हुए मनुष्य स्तर तक पहुँचने में सफलता पाई है। यह सब अनायास ही नहीं हो गया। महत्त्वाकांक्षा ने अधिक उत्तम परिस्थिति प्राप्त करने के लिए तदनुरूप मनःस्थिति बनाई है। सदुद्देश्य के लिए किए गए प्रयत्नों में नियति भी

सहायक होती है और ईश्वर की अनुकंपा भी। अस्तु जीवधारी को उच्च स्तरीय स्थिति तक पहुँचने की अभिलाषा उसे वहाँ ले आई जहाँ सृष्टि का मुकुट-मणि मनुष्य कहलाने का गर्वगौरव उपलब्ध हो सके।

इतने पर भी अनेकों में कुसंस्कारों का अभ्यास अभी भी बना हुआ है जो निम्न योनियों की विषम परिस्थितियों में भले ही स्वाभाविक रहे हैं, पर आज उन्हें अपनाये रहने में हानि ही हानि है।

मानवी प्रगति के मार्ग में अत्यंत छोटी किंतु अत्यंत भयानक बाधा है—अनियमितता की आदत। आमतौर से लोग अस्त-व्यस्त पाए जाते हैं। हवा के झोंका के साथ उड़ते रहने वाले पत्तों की तरह कभी इधर—कभी उधर फुदकते-फुदकते रहते हैं। निश्चित दिशा न होने से परिश्रम और समय बेहतर बर्बाद होता रहता है। धीमी चाल से चलने की स्वल्प क्षमता रखते हुए भी सतत् प्रयत्न से कछुए ने बाजी जीती थी और बेतरतीब उछलने भटकने वाला खरगोश अधिक क्षमता संपन्न होते हुए भी पराजित घोषित किया गया है। सामर्थ्य का जितना महत्त्व है उससे अधिक महत्ता इस बात की है कि जो कुछ उपलब्ध है उसी को योजनाबद्ध रूप से, नियत क्रम व्यवस्था अपनाकर, सदुद्देश्य के लिए नियोजित किया जाए। जो ऐसा कर पाते हैं वे ही क्रमिक विकास के राज मार्ग पर चलते हुए उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँचते हैं। जो इस ओर ध्यान नहीं देते उन्हें योग्यता एवं सुविधा के रहते हुए भी पिछड़ी परिस्थितियों में पड़े रहना पड़ता है। जबकि सुनियोजित जीवनचर्या बना सकने वाले एक के बाद दूसरी पीढ़ी पर चढ़ते हुए वहाँ पहुँचते हैं जहाँ साथियों के साथ तुलना करने पर प्रतीत होता है कि कदाचित किसी देव दानव ने ही ऐसा चमत्कार प्रस्तुत किया हो, पर वास्तविकता इतनी ही है कि प्रगतिशील ने नियमितता अपनाई। अपने समय, श्रम और चिंतन को एक दिशा विशेष में संकल्पपूर्वक नियोजित रखा। इसके विपरीत दुर्भाग्य का पश्चात्ताप उन्हें सहन करना पड़ता है, जो लंबी योजना बनाकर उस पर निश्चयपूर्वक चलते रहना तो दूर अपनी दिनचर्या बनाने तक की आवश्यकता नहीं समझते और बहुमूल्य समय को ऐसे ही आलस्य प्रमाद की अस्त-व्यस्तता में गँवाते रहते हैं। कहते हैं कि लक्ष्य और क्रम बनाकर चलने वाली चींटी पर्वत शिखर पर जा

पहुँचती है, जबकि प्रमादी गरुड़ ऐसे ही जहाँ-जहाँ पंख फड़फड़ाता और बीट करता दिन गुजारता है।

अच्छी आदतों में सर्वप्रथम गिनने योग्य है—नियमितता। समय और कार्य की संगति बिठाकर योजनाबद्ध दिनचर्या बनाने और उस पर आरूढ़ रहने का नाम नियमितता है। उसके बन पड़ते ही चिंतन को विचार करने के लिए एक दिशा मिलती है। व्यवस्थित कार्यक्रम बनाकर चलने से शरीर को उसमें संलग्न रहने की इच्छा रहती तथा प्रवीणता मिलती है। फलतः सूझबूझ के साथ निश्चित किया गया कार्यक्रम सरलता और सफलतापूर्वक संपन्न होता चला जाता है।

पराक्रमों में सबसे अधिक महत्त्व का वह है जिसमें अपनी अनगढ़ आदतों को सुधारने का श्रेय पाया जा सके। बाहरी संघर्षों से जूझने और कठिनाइयों को हटाने में दूसरे लोग भी सहायता कर सकते हैं और परिस्थिति वश श्रेय भी मिल सकता है। किंतु अनुपयुक्त आदतों को बदलना मात्र अपने निजी पुरुषार्थ के ऊपर ही रहता है इसलिए उसे प्रबल पराक्रम की संज्ञा दी गई है और ऐसे लोगों को सच्चे अर्थों में शूरवीर कहा गया है।

❐ ❐

वैभव नहीं महानता कमाएँ

प्रकृति ने अपने भंडार में वे सभी वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कर रखी हैं जिनकी जीवन निर्वाह के लिए आवश्यकता है। जो वस्तु जितनी अधिक आवश्यक है, वह उतनी ही सरलता से सुलभ है। उदाहरण के लिए मनुष्य और अन्य जीवधारियों को जीने के लिए साँस लेना सबसे अधिक आवश्यक है। साँस लेने के लिए प्रकृति द्वारा वायु का सबसे बड़ा भंडार उपलब्ध है। इसके बाद संभवतः पानी की आवश्यकता सबसे ज्यादा पड़ती है तो वायु के बाद पानी सर्वाधिक सरलतापूर्वक उपलब्ध है। उसे थोड़े-बहुत प्रयत्नों द्वारा हर कहीं सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। वायु तथा जल के बाद अन्न सबसे अधिक आवश्यक है उसे भी मनुष्य

परिश्रमपूर्वक आवश्यक ही नहीं पर्याप्त मात्रा में उगा सकता है। धरती माता में इतनी पोषण और उर्वरा शक्ति विद्यमान है कि एक दाने के हजार दाने बनाकर मनुष्य को वापस लौटा देती है। उसी प्रकार वह पहनने के लिए वस्त्र, भोजन बनाने के लिए ईंधन आदि भी प्रकृति से ही प्राप्त करता है। औषधियाँ, लोहा, इमारती लकड़ी, मकान के लिए मिट्टी और मिट्टी से बनी ईंटें, पत्थर, धातु, लोहा तांबा, सोना आदि वस्तुएँ भी धरती माता की कृपा से ही प्राप्त हो जाती हैं। इनमें जो वस्तुएँ जितनी कम मात्रा में आवश्यक होती हैं वे उतनी ही दुर्लभता से मिलती हैं।

जीवन की सामान्य आवश्यकताएँ साधारण प्रयत्नों से पूरी हो जाती हैं। प्रकृति ने ये सारी वस्तुएँ इतनी आसानी से इसलिए उपलब्ध करा रखी हैं कि उसकी संतानों को जीवन निर्वाह में कोई कष्ट या असुविधा न हो और वह सरलतापूर्वक अपनी आवश्यकताओं को पूरा करते हुए अपना विकास कर सकें। वात्सल्य और ममत्व से परिपूर्ण हृदय वाले माता-पिता जिस प्रकार अपने बच्चों की निर्वाह संबंधी आवश्यकताएँ जुटाते हैं, उन्हें इस ओर से निश्चिंत रखते हुए पढ़ने लिखने योग्य बनने और क्षमताओं को विकसित होने देने की व्यवस्था बनाते हैं। प्रकृति भी बहुत कुछ ऐसी ही व्यवस्था अपनी संतान के लिए करती है। यह बात और है कि मनुष्य और अन्य प्राणियों को निर्वाह के लिए परिश्रम करना पड़ता है। परिश्रम करने का स्वरूप भले ही दूसरा रहता हो, पर माता-पिता के सान्निध्य में रहते हुए भी बच्चों को खाने-पीने तथा पहिनने-ओढ़ने के लिए थोड़ा-बहुत प्रयास तो करना ही पड़ता है।

प्रकृति ने जिस उद्देश्य से मनुष्य के लिए आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध करने की व्यवस्था जुटाई है, वह है मनुष्य का नैतिक, बौद्धिक और आत्मिक स्तर का विकास, उन्नयन तथा उच्च स्थिति में आरोहण। लेकिन आजकल आमतौर पर यही समझा जाता है कि अत्यधिक समृद्धि ही सर्वतोन्मुखी उन्नति और शांति का मूल आधार है। उस आधार पर ही व्यक्ति और समाज की आंतरिक स्थिति तथा बाह्य व्यवस्था स्थिर, प्रगतिशील और उन्नत बनती है।

समृद्धि बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना कोई बुरी बात नहीं है। एक प्रकार से वह मनुष्य की श्रमशीलता का पुरस्कार है लेकिन समृद्धि के प्रति आत्यंतिक आग्रह मनुष्य को अपने स्वभाव से ही विचलित कर देता है। इस दृष्टि से समृद्धि के प्रति एकांगी आग्रह मनुष्य को व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से पतन की ओर धकेलता है, इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध विचारक ई० एफ० शूमाकर ने लिखा है कि आत्यंतिक समृद्धि से सर्वतोमुखी की धारणा मनुष्य को दो प्रकार से क्षति पहुँचाती है। पहला तो यह कि इस धारणा ने शांति को और प्रगति के लिए त्याग अथवा शांति को अनावश्यक घोषित कर दिया है और दूसरा यह कि जिस विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास हमने आज कर लिया है उसके कारण असमानता और शोषण की परंपरा बलवती होती जा रही है।

तथ्यों के संदर्भ में शूमाकर के इस प्रतिपादन को देखते हैं तो इसमें रत्तीभर भी अतिरंजना नहीं दिखाई देती है। एक बार किसी वस्तु विषय या लक्ष्य की उपयोगिता समझ ली जाए, भले ही वह अनुचित हो तो भी मनुष्य पूरी लगन और निष्ठा के साथ उसे प्राप्त करने में लग जाता है। समृद्धि को सबसे मूल्यवान समझ लेने पर भी यही होता है। उसके लिए ललक उत्पन्न होने पर नैतिक मूल्य समृद्धि के मार्ग में रुकावट लगने लगती है। उदाहरण के लिए ईमानदारी से मेहनत करने पर लग सकता है कि उसके सत्परिणाम बिलम्ब से मिलेंगे। जल्दी लाभ उठाने या अधिक मुनाफा कमाने के लिए मनुष्य बेईमानी से लेकर अन्य तरह के अनैतिक उपाय अपनाता है।

उपार्जन में अनीति का उपयोग किया जाता है तो स्वाभाविक है कि अर्जित धन भी इसी तरह की अमंगलकारी दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ाता है। परिश्रम, ईमानदारी और नीतिपूर्वक कमाई गई संपत्ति को अनुचित ढंग से अपव्यय करने का साहस नहीं होता लेकिन जिस संपत्ति को कमाने में कोई मेहनत नहीं करनी पड़ी, या जो मेहनत से अधिक प्राप्त हो गई है उसका सदुपयोग हो सकेगा इसकी कम ही संभावना रहती है। उससे दूसरे लोगों को अपने लाभ के लिए खरीदना या उनके नैतिक मूल्यों का सौदा करना व्यभिचार, नशेबाजी, महँगे शौक, दुर्व्यसन, विलासिता आदि कई प्रकार की अन्य प्रवृत्तियाँ अपनाई जाने

लगती हैं। जिनके पास इस तरह के साधन होते हैं वे तो बड़े मजे से यह भले-बुरे काम कर लेते हैं, लेकिन जिनके पास इस तरह की साधन-सुविधाएँ नहीं होतीं वे भी संपन्न व्यक्तियों की देखा-देखी उनकी तरह नकल करना चाहते हैं। इस योग्य स्थिति तो होती नहीं, परंतु अपने से ऊँची आर्थिक स्थिति के लोगों जैसे रहने की ललक उन्हें और भी जोर से अनीति के मार्ग पर धकेलती है। इस प्रकार समृद्धि को ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य या जीवन-दर्शन बना लेना व्यक्ति में गिरावट तथा समाज में अव्यवस्था ही पनपाता है।

इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए शूमाकर ने अपनी पुस्तक 'स्माल इजव्यूर्ा' में लिखा है कि आधुनिक व्यवस्था लोभ की प्रबल वासना से संचित है तथा ईर्ष्या से ओत-प्रोत है। स्वाभाविक ही समृद्धि और केवल समृद्धि को ही एक मात्र जीवन लक्ष्य मान लेना तो लोभ की प्रवृत्ति को ही पनपाता है। अब तो यह संभव नहीं है कि सभी लोग समान रूप से साधन संपन्न हो जाएँ या समृद्ध हों। विज्ञान की कृपा से अनेकानेक यंत्र निर्मित हुए हैं जो थोड़े समय में प्रचुर उत्पादन करते हैं। सौ आदमियों का काम सम्हालने वाली एक मशीन बाकी निन्यानवे व्यक्तियों को बेकार बनाती और उन निन्यानवे व्यक्तियों द्वारा संभावित उपार्जन भी एक मालिक के पास चला जाता है।

मशीनों और यंत्रों से थोड़े समय में अधिक उत्पादन होता है यह ठीक है पर यह भी सही है कि अधिक व्यक्तियों द्वारा हो सकने वाला उपार्जन थोड़े व्यक्तियों के पास चला जाता है। परिणाम यह होता है कि कुछ लोग जो मालदार और धन संपन्न होते हैं, मशीनें लगा सकते हैं, उद्योग-धंधे और कल कारखाने खोल सकते हैं, दिनों दिन और अधिक संपन्न होते जाते हैं तथा जिनके पास थोड़े साधन होते हैं, वे और अधिक साधनहीन होते जाते हैं। यह व्यवस्था विषमता की खाई को ही बढ़ाती है।

यह भी स्वाभाविक ही होगा कि जो लोग निर्धन और साधनहीन होते जाते हैं, उन्हें धनवानों और साधन संपन्नों से ईर्ष्या होगी। परिणामस्वरूप समाज में कलह का वातावरण बनता है। समृद्धि को ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मान लेना अंततः अनीति, अमंगल, अव्यवस्था और कलह को ही जन्म देना है। इसलिए आवश्यक है कि साधन वृद्धि

की आवश्यकता को एक निश्चित स्तर तक ही सीमित रखा जाए। महात्मा गांधी ने भी औद्योगीकरण और यंत्रीकरण को उतना ही आवश्यक माना था जितने से कि मनुष्य का जीवन और सरल बने। यंत्रीकरण बुरा भी नहीं है, बुरा उस स्थिति में है जब समृद्धि ही जीवन दर्शन बन जाए। साधन-सुविधाएँ भले ही बढ़ाई जाएँ पर उनका उपयोग वैभव, विलास, बड़प्पन की धाक जमाने और दूसरों को छोटा सिद्ध करने के लिए नहीं किया जाए। इस तथ्य और सत्य को पूरी तरह स्वीकार तथा अंगीकार किया जाना चाहिए कि जीवन साधनों के लिए नहीं है बल्कि साधन-सुविधाएँ जीवन के लिए हैं। जीवन सर्वोच्च और सर्वाधिक मूल्यवान है तथा उसकी सार्थकता आत्मिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास एवं ऊपर उठाने में ही है। अन्य किसी भी रूप में जीवन की सार्थकता सिद्ध नहीं होती है। इसलिए आदर्शों और नैतिक मूल्यों को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए ही किसी क्षेत्र विशेष में प्रवेश और प्रगति के प्रयास करने चाहिए।

धन, वैभव, पद, बड़प्पन को देखकर दूसरे लोग यह अनुमान लगाते हैं कि जिनके पास ये संपदाएँ हैं वे बहुत सुखी होते हैं, पर असल में बात ऐसी है नहीं। कोल्हू में बैल को चलते देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह तेल पीता होगा, खली खाता होगा और तेल के व्यापार से लाभ कमाता होगा तो यह मान्यता सही नहीं है। दूर से देखने पर अक्सर ऐसे ही भ्रम हो जाते हैं। अँधेरी रात में जंगली झाड़ हाथी जैसा लगता है, पर पास जाने पर असलियत खुल जाती है। संपदाएँ चंद्रमा की तरह दूर से चमकती तो खूब हैं, पर कोई वहाँ चला जाए तो वायु, जल, जीवन रहित एक निष्प्राण, नीरव और अंड-खंड पिंड ही दृष्टिगोचर होगा।

वैभव संग्रह कर सकना सहृदय व्यक्ति के लिए संभव नहीं, संसार में इतना दुःख भरा पड़ा है कि उसे दूर करने के लिए संपदा तो क्या सहृदय व्यक्ति अपना प्राण भी देना चाहता है। जो सब ओर से आँख बंद किये रहे—अपने और अपने बेटे की अमीरी ही सोचता रहे, केवल उसी कठोर हृदय कंजूस के लिए अमीर बन सकना संभव है। न्यायोपार्जित आजीविका स्वल्प होती है, उससे गुजारा भर हो सकता है—संग्रह नहीं। संगृहीत संपदा—समीपवर्तियों में ईर्ष्या, द्वेष उत्पन्न करती है, ठग पीछे पड़ते हैं और उनकी धाक न लगे तो शत्रु

बनते हैं। संग्रह की सुरक्षा और भी कठिन है। मधुमक्खी के छत्ते पर न जाने कितनों का दाव रहता है, फिर वह संपदा मदोन्मत्त बनाती है, अहंकार बढ़ाती है और व्यसनी, विलासी बनाकर पतन के गर्त में धकेल देती है। जब तक वह संग्रह रहता है उत्तराधिकारी भी यह दंड दुष्परिणाम भोगते हैं।

विभूतियाँ आंतरिक सद्गुणों को कहते हैं। असली संपदाएँ यही हैं। वे जहाँ भी होंगी व्यक्तित्व में श्रेष्ठता का समावेश करेंगी। सम्मान और सहयोग का क्षेत्र बढ़ाएँगी। मित्रों का क्षेत्र विस्तृत होता चला जाएगा, प्रशंसकों की कमी न रहेगी।

सद्गुणों के आधार पर ही ठोस, चिरस्थायी, उच्चकोटि की सफलताएँ मिलती हैं। श्रमशीलता, साहस, धैर्य, लगन, संयम और अध्यवसाय के आधार पर ही इस संसार में विविधविधि, उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं और प्रगति का पथ प्रशस्त होता है। सच्चरित्रता और प्राथमिकता के आधार पर ही विश्वास प्राप्त किया जाता है और विश्वासी को ही समाज में अपनाया जाता है, उसे ही महत्त्वपूर्ण काम सौंपे जाते हैं और सहयोग दिये जाते हैं और उसी कमी के कारण उसे कहीं भी सच्चा सहयोग नहीं मिलता। फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण प्रगति से आजीवन वंचित ही रहना पड़ता है।

सद्भावना संपन्न—सद्गुणी व्यक्तित्व अपने आप में एक वरदान है। ऐसा व्यक्ति अपने भीतर संतोष, उल्लास, हल्कापन अनुभव करता है। उसे न किसी से डर होता है न दुराव। जिसमें न भीरुता है न दुष्टता वह किसी से क्यों डरेगा ? जिसके मन में पाप दुराव नहीं है। उसे किसी के आगे झेंपने, झिझकने की आवश्यकता क्यों पड़ेगी ? सदाचारी व्यक्ति निर्भय रहता है और निर्द्वंद। अपनी न्यायोपार्जित आजीविका से गरीबों जैसा गुजारा करते हुए भी उसे इतना संतोष रहता है जितना अनीति उपार्जित विपुल संपदा के स्वामी को कभी स्वप्न में भी नहीं मिल सकता। हमें संपदाओं के लिए लालायित होना चाहिए। विभूतियों का महत्त्व समझना चाहिए। जहाँ विभूतियाँ होंगी वहाँ संपदाएँ भी रहेंगी। पर आँख मूँदकर संपदा के पीछे भागने से खाली हाथ रहना पड़ता है। न सुख मिलता है न संतोष।

❑ ❑

संपदाएँ सत्कार्यों में नियोजित हों

प्रतिभाओं के अनेक क्षेत्र हैं—दर्शन, अध्यात्म, साहित्य, राजनीति, सिनेमा, रंगमंच, नृत्य, गीत-संगीत, समेत समस्त ललित कलाएँ आदि। इन सभी मानवीय विभूतियों को सत्पथगामी होना चाहिए, अन्यथा वे समाज में अनर्थ फैलाती हैं।

एक प्रतिभा और है उसने उपरोक्त सभी अन्य विभूतियों से अग्रिम पंक्ति में अपना स्थान बना लिया है। उसका नाम है—धन। इन दिनों धन का वर्चस्व अत्यधिक है। सारी कलाएँ उससे हेठी पड़ गई हैं और लगभग सभी ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है। धन का प्रलोभन देकर गायक, वादक, चित्रकार, अभिनेता, कवि, साहित्यकार, पत्रकार, धर्म गुरु, राजनेता सभी अपने वश में किए जा सकते हैं और उन्हें कठपुतली की तरह नचाया जा सकता है। अथवा यों कहना चाहिए कि सभी कलाएँ धन की कृपा कटाक्ष प्राप्त करने के लिए अपना शील सतीत्व बेचने के लिए लालायित फिर रही हैं। प्रतिभाएँ धन के द्वारा खरीदी जा रही हैं और वे खुशी-खुशी अपना आत्म-समर्पण करके उसकी इच्छानुसार नाचने के लिए बाजारू वेश्या की तरह अपना साज-श्रृंगार सजाए बैठी हैं। इस प्रकार आज धन, प्रतिभाओं का निर्देशक बन बैठा है।

प्रतिभा को लोभ, परिग्रह और कृपणता के बंधनों से छुड़ाना होगा। धनी भी एक कलाकार है। भले ही वह कलाकारिता उचित हो या अनुचित, पर उसे स्वीकार तो करना ही पड़ेगा। जिन दिनों ६० प्रतिशत लोग जीवन निर्वाह की मूलभूत आवश्यकता जुटाने के लिए दैनिक आवश्यकताएँ भर पूरी नहीं कर पाते, उन दिनों किसी का धनी, अमीर, मालदार बन जाना सचमुच किसी विलक्षण व्यक्ति का ही काम है। अधिक उपार्जन की क्षमता समझ में आती है पर जिन दिनों दशों दिशाएँ, अज्ञान, अभाव और अशक्ति की पीड़ा से बुरी तरह कराह रही हों उन दिनों लोक मंगल की आवश्यकताओं से आँखें मींचकर जो अर्थ संग्रह कर सकता है, अमीरी और अय्याशी जुटा सकता है, उसे पत्थर के कलेजे वाला आदमी ही कहा जाएगा। घोर

अनुदार, परम कृपण और स्वार्थांध के लिए ही यह स्थिति प्राप्त कर सकना शक्य है। सो इन विशेषताओं से संपन्न धनी व्यक्ति को महापुरुष तो नहीं, विलक्षण जरूर कहा जाएगा। यह विलक्षणता 'कला' नहीं तो और क्या है। धनी भी कलाकारों की अग्रिम पंक्ति में खड़ा है, उसे पीछे कौन धकेले ?

इस अग्रिम पंक्ति में खड़ी प्रतिभा को कुमार्गगामी नहीं होने दिया जाना चाहिए। उसे अति नम्रतापूर्वक समझाया जाना चाहिए कि अन्य कलाओं की तरह संपन्नता भी एक परम पवित्र विभूति है और इसका उपयोग लोक-मंगल के लिए ही होना चाहिए। कमाए कोई कितना ही, पर अपने और अपने परिवार के लिए खर्च भारतीय जनता का औसत स्तर ध्यान रखकर ही करे। बचत को उदारतापूर्वक उन कार्यों के लिए देता रहे, जिनके अभाव में मानवीय प्रगति रुकी पड़ी है। समय-समय पर सर्वमेध करके अपना सारा कोष लोक-मंगल के लिए दे डालने वाले प्राचीनकाल के श्रीमंतों का उदाहरण उन्हें बताया जाना चाहिए और भामाशाह का आदर्श अपनाकर अपनी कला को सार्थक सिद्ध करने का अनुरोध करना चाहिए।

अमीरी और विलासिता का ठाट-बाट वाला जीवन अब अगले दिनों प्रशंसा और प्रतिष्ठा का आधार नहीं रहेगा वरन् जनता का रोष ही उभरेगा ? बिना बेईमानी कमाया हुआ ही सही—परपीड़ा मानवता की कराह को अनुभव कर निष्ठुरता और कृपणता के साथ जो जमा कर रखा है वह अवांछनीयता ही कहा जाएगा। अगले दिनों ऐसे संग्रही जनता की अदालत में अपराधियों की तरह खड़े किए जाने वाले हैं, आध्यात्मिकता और धार्मिकता तो अनादि काल से परिग्रह को—संग्रह को पाँच प्रधान पातकों में गिनती रही है। अब समाज की भावनाएँ भी उस संबंध में अधिक उग्र हो चली हैं। उससे धनी को संपन्न मानने की अपेक्षा अधिक दुष्ट दुराचारी मानना आरंभ किया है और अगले ही दिनों समाजवाद, साम्यवाद की उँगलियाँ गले तक डालकर जो खाया है उसे उगलवा लेने की तैयारी हो रही है। इस वस्तुस्थिति को समझना चाहिए और उस प्रतिक्रिया से उबरना चाहिए। रूस, चीन एवं अन्य समाजवादी देशों में धनियों का बड़ा उत्पीड़न और तिरस्कार हुआ है। देर सवेर सारे संसार में वही होने वाला है। शंकर जी को बेल पत्र, गंगाजी को दूध और हनुमान जी

को प्रसाद, महंत जी को मालपुए खिलाकर अब किसी को ईश्वरीय सहायता की आशा नहीं करनी चाहिए और लंबी माला सटकने वाले और रोज गंगाजल पीने वाले को अपनी धार्मिकता की दुहाई अब नहीं देनी चाहिए क्योंकि इसे घड़ियाल के आँसू भर माना जाएगा। अधिक उपार्जन कर सकने वाले कलाकार की सदाशयता केवल इस कसौटी पर कसी जाएगी कि उसने व्यक्तिगत उपयोग के लिए न्यूनतम अंश लेकर शेष को लोकमंगल के लिए उदारता पूर्वक दिया या नहीं। राजाओं के राज, जमींदारों की जमींदारी जा चुकीं अब अमीरों की अमीरी जाने को तैयार बैठी है। सरकारी टैक्सों की दर दिन-दिन बढ़ रही है। इनकम टैक्स, सुपर टैक्स, संपत्ति टैक्स, मृत्यु टैक्स आदि की कैंची तेजी से चल रही है। कुछ दिन बाद इन झंझटों में व्यर्थ सिर फोड़ी से बचने के लिए समाज सीधे, व्यक्ति की निजी संपदा पर कब्जा कर लेगा। यह एक कडुई किंतु सुनिश्चित सच्चाई है। इसलिए हर धनवंत कलाकार को पूर्व चेतावनी, नेक सलाह दी जानी चाहिए कि वह बेटे, पोतों के लिए दौलत जमा न करे। अमीरी का ठाट-बाट न जुटाएँ। सोने-चाँदी की सलाखें जमीन में न गाढ़े और तिजोरियाँ भरने के फेर में न रहे। इस व्यर्थ प्रयास में उसे सुख नहीं दुःख ही मिलेगा। इस फेर में वह प्रशंसा का नहीं भर्त्सना का पात्र ही रहेगा।

बेटे पोतों के लिए—सात पीढ़ी को बैठे-बैठे खाने के लिए दौलत जमा करते जाना उनके साथ अत्यंत दुष्टता बरतना है। हराम की कमाई किसी को दुर्गुणी और पतनोन्मुख ही बना सकती है। अपनी संतान को हराम खाऊ के घृणित स्तर पर पटकने की कुचेष्टा किसी को नहीं करनी चाहिए। उन्हें पढ़ा-लिखाकर स्वावलंबी बना देने भर की बात तो समझ में आती है पर इस प्रक्रिया का औचित्य समझ में नहीं आता कि कमाऊ संतान के लिए आप अपनी कमाई मुफ्त के माल पर गुलछर्रे उड़ाने के लिए छोड़ा जाए। पारिवारिक उत्तरदायित्व पूरे करने के बाद बचा हुआ हर पैसा विशुद्ध रूप से इस अभावग्रस्त समाज को मिलना चाहिए और ईमानदारी के साथ वही असली हकदार है। बेटे को बाप की कमाई मिलनी ही चाहिए, यह सामंतवादी अर्थ भ्रष्टता संसार में से जितनी जल्दी मिट जाए उतना ही अच्छा है।

यों, वर्तमान धनवानों ने जिस ढंग से कमाया है और जिस मनोवृत्ति से संग्रह किया है, उसे देखते हुए यही सोचा जा सकता है कि वे वह पैसा (१) बेटे, पोतों को विलासी हरामखोर बनाने के लिए छोड़ेंगे। (२) चोरों, डाक्टरों, शराब घरों एवं वेश्याओं के यहाँ फेंकेंगे। (३) राजनैतिक दाँव-पेचों में खर्च करेंगे। (४) विवाह शादियों में होली फूँकेंगे। (५) अमीरी का ठाट-बाट और शान-शौकत का ढोंग खड़ा करेंगे। (६) मरने के बाद मुकदमेबाजी और सरकारी टैक्सों में उसे बह जाने देंगे। (७) सस्ती स्वर्ग की टिकट खरीदने के लिए छुट-पुट कर्म-कांडों के बहाने धर्म वंचकों से जेब कटाएँगे। (८) कोई तुरंत नामवरी का या प्रतिष्ठा का लालच दिखा दे तो उसमें थोड़ा बहुत लगा देंगे। धर्मशाला सदावर्त का विज्ञापन बोर्ड भी उन्हें रुचिकर लग सकता है। (९) कोई ठग उन्हें लंबे-चौड़े सब्जबाग दिखाकर ठग ले जा सकता है। ऐसे ही किसी औंधे-सीधे मार्ग में उनकी कमाई जा सकती है, पर मानवीय उत्कर्ष के सच्चे आधार—लोकमानस के परिवर्तन में शायद ही इस वर्ग में से किसी की रुचि पैदा की जा सके।

दीखती निराशा ही है, पर कोशिश करनी चाहिए कि कोई विवेकशील धनी प्रतिभा दूर-दर्शिता का परिचय दें और मनुष्य को भावनात्मक परतंत्रता के कारागार से छुड़ाने में अपनी कमाई का कुछ अंश लगा सके। असंभव कुछ भी नहीं। एक भामाशाह उस युग में भी निकला था, जिसने राणा प्रताप की नसों में नया रक्त भरा था और पर्दे के पीछे भारतीय स्वतंत्रता का एक गौरवपूर्ण अध्याय खोला था। हो सकता है उसकी परंपरा का कोई बीज कहीं पड़ा अंकुरित हो रहा हो और प्रोत्साहन का अभिसिंचन पाकर हरे-भरे पत्र-पल्लवों से लदकर फलने-फूलने तक बढ़ चले। प्रयत्न इसके लिए भी करना चाहिए। धनियों को समझना चाहिए—भावनात्मक नव-निर्माण के पुण्य प्रयोजन में सहयोग देने से बढ़कर और कोई दान-पुण्य हो नहीं सकता। समझ और सदाशयता जीवित हो, तो वे वस्तुस्थिति पर विचार करें और उदारता की एक बूँद उस प्रयोजन के लिए भी खर्च कर दें, जिस पर मानव जाति एवं समस्त संसार के भाग्य-भविष्य बनने बिगाड़ने की संभावना बहुत कुछ निर्भर है।

राणा प्रताप को धन के बिना भारतीय स्वाधीनता की रक्षा करना असंभव दिखा तो भामाशाह आगे बढ़कर आए। आज मानव जाति की बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक स्वतंत्रता की रक्षा और प्रतिष्ठा करने के लिए फिर पैसे की जरूरत है। विचार क्रांति का रथ साधनों के अभाव में रुका खड़ा है। ज्ञान-यज्ञ की ज्वाला समिधाओं के अभाव में प्रज्ज्वलित होने का अवसर प्राप्त नहीं कर रही है। सामाजिक कुरीतियों की फाँसी घर के कैदी की तरह समाज जकड़े पड़ी है। इन कुत्साओं और कुठाओं के विरुद्ध धर्म युद्ध की भेरी तो बज गई पर कारतूस खरीदने को पैसा नहीं। सो हर जिंदा दिल धनी का हर फालतू पैसा उसी प्रयोजन के लिए लगना चाहिए, युग ने—भगवान् ने धनवंत कलाकारों को इसके लिए पुकारा है। वे अनसुनी कर भी रहे हैं और करेंगे भी, पर गाँठ यह भी बाँध रखा जाए कि इस प्रकार 'बचाए रखने' की चतुरता उन्हें आज की चतुरता की तुलना में अत्यधिक महँगी और अत्यधिक कष्टकारक सिद्ध होगी। कैसे ? इस प्रश्न का उत्तर निकटवर्ती समय ऐसी अच्छी तरह देगा जिसका कभी विस्मरण न किया जा सके।

नव युग में प्रत्येक प्रतिभा को समाज और परमेश्वर की धरोहर ही समझा जाएगा तथा यह देखा जाएगा कि जिसे वह अमानत सौंपी गई है, वह उसका दुरुपयोग न करने पाए। दुरुपयोग करने वाले भर्त्सना से लेकर दंड तक के पात्र बनेंगे। प्रत्येक प्रतिभा को धर्मनिष्ठ, सत्कर्मनिरत, सन्मार्गगामी होना ही चाहिए। कला जीवन के लिए है और जीवन की विकासमान गति में योगदान देने में ही उसकी सार्थकता है, न कि उसे विकृतियों में फँसाने, सड़ाने और संकीर्ण बनाने में। धनोपार्जन की कला को भी धर्मनिष्ठ बनाना चाहिए।

❐ ❐

चरित्र एक सर्वोपरि संपदा

आवश्यकता से अधिक धन लिप्सा पूरी करने में लोग इतने बावले हो जाते हैं कि उन्हें उचित-अनुचित का तनिक भी ध्यान नहीं रहता। इस प्रयत्न में वे यह भी भूल जाते हैं कि उनके ये कृत्य उनकी आत्मा को दिन-दिन गिराते हुए उनके लिए एक ज्वलंत नरक का निर्माण कर रहे हैं।

निश्चित है जब मनुष्य आवश्यकता से अधिक धन एकत्र करना चाहेगा तो उसे शोषक, क्रूर एवं अनुदार बनना ही होगा। उसे दूसरे का हिस्सा छीन कर, लूटकर अथवा ठग कर अपनी थैली मोटी करनी पड़ेगी। उसे दया, सहानुभूति, सहायता, संवेदना एवं उदारता के मानवीय गुणों को तिलांजली देकर अपने को पाषाण-खण्ड की तरह नीरस एवं निर्मम बनना होगा। उसे अपने व्यवसाय में बेईमानी और कारोबार में मक्कारी को प्रश्रय देना होगा। धन के लिए मानवीय गुणों को छोड़कर इस आसुरी दुर्गुणों को अपने में लाने में लोग कौन-सी बुद्धिमानी मानते हैं यह बात किसी भी विचारवान व्यक्ति की समझ में नहीं आ सकती।

चरित्र की महत्ता पैसे से कहीं बढ़ कर है। जिसने धन के लोभ में चरित्र खो दिया है, अथवा चरित्र खोकर धन कमाया है उसने मानो पाप ही कमाया है। चरित्रहीन व्यक्ति का संसार में कहीं भी आदर नहीं होता फिर उसका बैंक बेलेंस कितना ही लंबा चौड़ा क्यों न हो इसके विपरीत चरित्रवान व्यक्ति निर्धनता की दशा में भी सब जगह सम्मान की दृष्टि से ही देखा जाता है।

यह चरित्र एवं सदाचरण का ही प्रभाव होता था कि पूर्व काल में किसी ऋषि अथवा मुनि के आ जाने पर बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट उनके आदर में सिंहासन छोड़कर खड़े हो जाते थे। पूर्व काल ही क्यों आज भी तो कोई विश्वस्त महात्मा अथवा आचरणवान व्यक्ति आ जाता है तो लोग उनके प्रति अहेतुक आदर भाव प्रदर्शित करने लगते हैं। कहाँ दयनीय वेशभूषा में धन-वैभव से रहित महात्मा गाँधी

और कहाँ संसार का सबसे शक्तिशाली सम्राट पंचम जार्ज किंतु महात्मा गांधी के उज्ज्वल चरित्र एवं सत्याचरण का ही चमत्कार था कि उक्त सम्राट को अपनी राज परंपरा की उपेक्षा करके उनसे समानता के स्तर पर आकर और खड़े होकर हाथ मिलाना पड़ा। यह शक्ति एवं वैभव पर चरित्र की विजय थी। अनेक लोग इस घटना का अवमूल्यन करने के लिए कह सकते हैं कि गाँधीजी की उस मान्यता के पीछे भारत के विशाल जनमत की श्रद्धा का बल था। किंतु जनमत की श्रद्धा जीतने के पीछे किसका बल था ? निश्चय ही वह बल महात्मा के चरित्र एवं उज्ज्वल आचरण का था, जिसका संसार के सारे धन-वैभव की अचाहना करके, उन्होंने प्रयत्नपूर्वक विकास किया था। जिस विवेक बल पर गाँधीजी भारत का लोक नायकत्व प्राप्त कर सके थे, यदि वे चाहते तो उसी विवेक के बल पर असंख्यक पति बन सकते थे, जिस प्रकार लोग बने और बनने का प्रयत्न कर रहे हैं। किंतु जब उनकी यह चरित्र रहित धनाढ्यता उनके लिए उस विशाल सम्मान का संपादन न कर सकती थी जो उन्हें मिला और संसार ने उन्हें दिया।

धनी मानी वह नहीं है जिसके पास सोने, चाँदी अथवा मुद्राओं की बहुतायत है और न धनी मानी उसे माना जा सकता है जिसका कारोबार लंबा चौड़ा है, धनी मानी वास्तव में वही है जिसके पास चरित्र रूपी धन है। माननीय यदि संसार में कोई वस्तु हुई है और आगे भी होगी वह मनुष्य का महान चरित्र ही है। धनी का आदर तो लोग स्वार्थवश करते हैं वह भी वे लोग जिनमें धन लिप्सा की दुर्बलता होती है। स्वार्थ निकल जाने अथवा आशावान रहने से स्वार्थी व्यक्ति तक उस धनवान का आदर करना छोड़ देते हैं जिसके पीछे चरित्र की विपुलता नहीं होती।

सच्चरित्रता से मनुष्य की आंतरिक शक्तियों का विकास होता है। चरित्रवान व्यक्ति संसार में कहीं भी निर्भयता पूर्वक विचरण कर सकता है। भय, अवमानना अथवा अप्रतिष्ठा की तुच्छ शंका उसके पास से होकर नहीं जाती। चरित्रवान की आत्मा इतनी उज्ज्वल एवं बलिष्ठ हो जाती है, उसका आत्म-विश्वास इतना ऊँचा हो जाता है कि वह निर्धन होते हुए भी धनवानों के बीच निसंकोच होकर आता जाता, बात करता और समुचित सम्मान पाता है। चरित्रवान व्यक्ति

अल्पबल होने पर भी बड़े-बड़े बलवानों के बीच निर्भयता का प्रमाण ही नहीं देता अपितु उन्हें प्रभावित किया करता है। किसी चरित्रवान व्यक्ति को कभी कोई चरित्रहीन बलवान निरस्त कर सका है ऐसा इतिहास, आज तक कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सका है।

अभय, चरित्र की विशेष देन है। चरित्रवान व्यक्ति संसार में किसी से भयभीत नहीं होता। उसे अपने तथा अपने आचरण पर अखंड विश्वास रहता है। उसे मालूम रहता है कि उसने कोई भी अनुचित काम नहीं किया और यह भी जानता है कि वह कोई गलत करेगा भी नहीं। मन-वचन कर्म से औचित्य का पालन करने वाले के पास भय नामक दुर्बलता आ ही नहीं सकती।

अपनी पोल का बहुत अधिक विरोध करते देखकर पोप ने प्रसिद्ध धर्म प्रचारक महात्मा मार्टिन लूथर के पास संदेश भेजा कि या तो वह पोप के विरुद्ध प्रचार करना बंद कर दे, नहीं तो उसका सिर कटवा लिया जाएगा। सत्याचरण के विश्वासी मार्टिन लूथर ने कहला भेजा कि 'मुझे खेद है कि मेरे पास एक ही सिर है, यदि हजार सिर होते और वे सब इस धर्म सुधार की पुण्य वेदी पर बलिदान हो जाते तो मैं अपने को अधिक धन्य समझता।'

महात्मा लूथर की यह निर्भीकता उनके उच्च चरित्र तथा सत्याचरण का ही प्रसाद था। कोई भी चरित्रहीन व्यक्ति, एक तो धर्म सुधार के ऐसे मार्ग पर चलने का साहस ही नहीं करता और यदि वह किसी कारणवश चल भी देता तो पोप की यह धमकी सुनकर उसके पैर डगमगा जाते और वह मैदान से भागकर किसी कोने में छिपा रहता अथवा पोप के ही पैरों पर जा गिरता। किंतु धन्य है सच्चरित्रता को जिसने एक सामान्य जैसे व्यक्ति लूथर को महात्मा बनाकर इतना साहसी, निर्भीक एवं आत्म-विश्वासी बना दिया कि वह पोप जैसे शक्तिशाली व्यक्ति की चुनौती हँसते-हँसते स्वीकार कर सका।

चरित्रवान व्यक्ति को अखंड विश्वास रहता है कि उसके सदाचरण से आकर्षित होकर जनमत उसके पक्ष में ही रहेगा। वह जानता है कि वह सच्ची निष्ठा के साथ वही काम कर रहा है जिसकी मानव जाति को आवश्यकता है और उसके लिए पूरी तरह हितकर है। उसे अपने मन-वचन-कर्म में इतना पवित्र विश्वास रहता

है कि संसार में उसका कोई शत्रु हो ही नहीं सकता और यदि खल अथवा दुष्ट उसके साथ विश्वासघात करेगा भी तो उसकी वह मृत्यु बलिदान मानी जाएगी। लोक में उसकी स्मृति पूजी जाएगी और परलोक में सद्गति का अधिकारी बनेगा। इस प्रकार चरित्रवान व्यक्ति अपने मन, वचन, कर्म की सत्य-सदाशयता के बल पर निर्भय रहता है। न उसे लोक का भय सताता है और न परलोक का।

धन के अभाव में मनुष्य ऊँचा उठ सकता है, विद्या के बिना निर्वाह कर सकता है, किंतु आचरणहीनता की दशा में वह सदैव हेय एवं घृणित ही बना रहेगा। ढेरों धन कमा लेने और गाड़ियों ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी यदि मनुष्य अपने चरित्र को उज्ज्वल न रख सका तो लोग उसके धन से घृणा करेंगे और ज्ञान में अविश्वास। वह जहाँ भी जाएगा एक आदरपूर्ण भाव बिंदु के लिए तरसेगा। वह चाहेगा कि लोग उसे प्रेम से अपने पास बिठा लें और विश्वास पूर्वक बात करें। परंतु उसकी यह इच्छा कहीं पूरी नहीं होगी। वह लोगों पर अपने धन का प्रभाव डालने के लिए सहायता का हाथ बढ़ायेगा किंतु लोग उसकी उस सहायता भावना में शंका करेंगे, कोई कुत्सित मंतव्य का भय मानेंगे। चरित्रहीन के सत्कर्म तक लोगों के लिए शंका एवं संदेह का विषय होते हैं।

चरित्रहीन के पास ईमान अथवा सिद्धांत नाम की वस्तु नहीं होती। उसका ईमान अधिकतर पैसा और सिद्धांत केवल स्वार्थ होता है। चरित्रहीन ईमानदारी दिखलाता है। किसी को धोखा देने के लिए, सिद्धांत की दुहाई देता है स्वार्थ सिद्धि के लिए। उसका कोई भी कार्य अथवा कथन किसी प्रकार विश्वसनीय नहीं होता। चरित्रहीन के साथ कितना ही उपकार क्यों न किया जाए, उस पर कितना ही विश्वास क्यों न किया जाए पर अवसर पाते ही वह डंक नहीं मारेगा ऐसा किसी प्रकार विश्वास नहीं किया जा सकता। ऐसी अविश्वसनीय स्थिति किसी भी मनुष्य के लिए प्रत्यक्ष नरक ही कही जा सकती है। जीने को तो संसार में चरित्रहीन व्यक्ति भी जीते हैं किंतु अविश्वास, संदेह, शंका, कलह अथवा लांछनपूर्ण जीवन, जीवन नहीं है। यह कोई अत्युक्तिपूर्ण कथन नहीं है, यह एक तथ्य है जिसको भद्र पुरुष ही नहीं चरित्रहीन व्यक्ति भी भली प्रकार जानता है।

चरित्र मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति और संपदा है। संसार की अनंत संपदाओं के स्वामी होने पर भी यदि कोई चरित्रहीन है तो वह हर अर्थ में विपन्न ही माना जाएगा। निर्धन एवं साधनहीन होने पर चरित्रवान का मस्तक समाज में सदैव ऊँचा रहता है, उसकी आँखों में चमक और मुख पर तेज विराजमान रहता है। इसके विपरीत चरित्रहीन का व्यक्तित्व अपनी मलीनता की मखमल में भी नहीं छिप सकता।

संसार में उल्लेखनीय कार्य करने वालों में से एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं रहा है जो पूरी तरह से चरित्रवान न हो। जन-नेतृत्व करने अथवा समाज की गति बदल देने की शक्ति केवल चरित्र से ही प्राप्त हो सकती है। मानव समाज का जो भी विकास आज तक हुआ है या जो उन्नति और विकास आगे होगा उसके पीछे चरित्र धनी, सदाचारी लोगों का ही कर्त्तव्य रहा है और आगे भी रहेगा।

चरित्रबल संसार में सब बलों से श्रेष्ठ और सारी संपत्तियों में मूल्यवान संपत्ति है। इसे पाने में मनुष्य का कुछ भी तो खर्च नहीं होता, सदाचार एवं चरित्र मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। स्वभावतः संसार का कोई भी मनुष्य दुश्चरित्र होकर नहीं जन्मता, चरित्रहीनता मनुष्य का आरोपित दोष है। हर मनुष्य का सहज कर्त्तव्य है कि वह हर मूल्य पर अपने चरित्र की रक्षा करे और यदि वह किसी कारण से विक्षत हो गया है तो हर मूल्य एवं हर प्रयत्न पर उसे शुद्ध एवं स्वस्थ करना चाहिए। इस नश्वर मानव जीवन में चरित्र ही अमर उपलब्धि है। वह मनुष्य को नर से नारायण बना देता है।

सच्चरित्रता अपने में एक महान गुण है। इसका तात्पर्य विशिष्टताओं से होता है, जिससे मनुष्य में शालीनता, विनम्रता, आज्ञाकारिता, सरलता, सहनशीलता, जैसे सद्गुण विकसित होते हैं। ये गुण जिस किसी के पास होते हैं, वे सदाचारी कहे जाते हैं। व्यक्तित्व का समग्र विकास इन्हीं गुणों के आधार पर हो पाता है। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि सच्चरित्रता की आधारशिला पर ही व्यक्तित्व का समग्र विकास निर्भर है।

सदाचरण से व्यक्ति में आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है, जिससे वह श्रेष्ठ कार्यों में निष्ठापूर्वक अग्रसर हो सके। भले ही परिस्थितियाँ विकराल रूप धारण करके सामने क्यों न खड़ी हों ? महात्मा लूथर की यह घटना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—

'मुझे खेद है कि मेरे पास एक सिर है यदि हजार सिर होते और वे सब इस धर्म सुधार की पुण्य वेदी पर बलिदान हो जाते, तो मैं अपने को अधिक धन्य समझता' यह कथन मार्टिन लूथर ने उस समय कहा था, जब तत्कालीन पोप द्वारा सुधारवादी आंदोलन चलाते रहने पर भयंकर त्रास मिलने की धमकी दी थी। किंतु लूथर उससे तनिक भी विचलित नहीं हुए और अपने सत्प्रयत्न में अविचल भाव से आजीवन लगे रहे।

सच्चरित्रता अपने में एक महान संपदा है। महापुरुषों के पास सबसे बड़ी पूँजी उनके चरित्र की ही होती है, जिनके सहारे वे निरंतर अपने प्रगति पथ पर बढ़ते जाते हैं। चरित्र की महत्ता धन संपदा से कहीं अधिक बढ़कर है। महाभारतकार ने भी लिखा है—

'वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।।'

'चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए धन तो आता-जाता रहता है, धन से हीन व्यक्ति हीन नहीं होता, किंतु चरित्र नष्ट हो जाने पर पूर्णतया नष्ट हो जाता है।'

जिससे धन के लोभ में चरित्र खोया अथवा चरित्र खोकर धन कमाया उसने मानो अनर्थ कमाया है। चरित्रहीन व्यक्ति का संसार में कहीं भी आदर नहीं होता, भले ही वह कितना ही धनी मानी बन गया हो, इसके विपरीत चरित्रवान् व्यक्ति अभावग्रस्त स्थिति में भी सर्वत्र सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

धनी का आदर तो लोग स्वार्थ वश करते हैं। स्वार्थ निकल जाने पर अथवा आशा न रहने पर स्वार्थी व्यक्ति तक उस धनवान् का आदर करना छोड़ देते हैं, जिसके पीछे चरित्र का बल नहीं।

संसार में वंदनीय अभिनंदनीय कार्य करने वालों में से एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं रहा, जो चरित्रवान् न रहा हो। जन-नेतृत्व करने अथवा समाज की गति बदलने की शक्ति केवल चरित्र से ही प्राप्त

होती है। मानव समाज का जो भी विकास आज तक हुआ है या आगे होगा उसके पीछे चरित्र के धनी सदाचारी लोगों का ही हाथ रहा है और आगे भी रहेगा।

वस्तुतः सदाचार ही सबसे बड़ी संपत्ति है, जिसके आधार पर मनुष्य ऊँचे उठते और आगे बढ़ते हैं। साथियों का सहयोग-सद्भाव लिए बिना कोई व्यक्ति एकाकी प्रयत्नों से कुछ कहने लायक प्रगति कर सकता है, इसमें संदेह है। दूसरों की सहायता बिना हँसी खुशी भी स्थिर नहीं रह सकती। कठिनाइयों में दूसरों का सहारा चाहिए ही। यह सब जुटा सकना, उसी के लिए संभव है जो अपने मधुर स्वभाव से दूसरों को प्रभावित एवं आकर्षित कर सकता है। ऐसा चुंबकत्व सच्चरित्रता में ही सन्निहित रहता है।

चरित्र मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति-संपदा है। संसार की अनंत संपदाओं के स्वामी होने पर भी यदि कोई चरित्रहीन है, तो वह हर अर्थ में विपन्न ही माना जायेगा, निर्धन एवं साधनहीन होने पर भी चरित्रवान् का मस्तक समाज में सदैव ऊँचा रहता है। इसके विपरीत चरित्रहीन का व्यक्तित्व अपनी आंतरिक कुरूपता को महँगी साज-सज्जा ओढ़े फिरने पर भी छिपा नहीं सकता।

चरित्रवान् व्यक्ति को यह विश्वास रहता है कि उसके सदाचरण से प्रभावित होकर जनमत उसके पक्ष में ही रहेगा। वह सदा सच्ची निष्ठा के साथ वही काम करता है जिसमें लोकहित और आदर्शों का प्रतिपालन समाहित है। इसी विशेषता के कारण उसे पर्याप्त जन सहयोग भी प्राप्त होता है, फलतः वह आश्चर्यजनक समझे जाने वाले कार्यों को भी पूरा कर लेता है।

जितने भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व रखने वाले कार्य हुए हैं, वे चरित्रवान् व्यक्तियों द्वारा जन सहयोग के बल पर ही पूरे हुए हैं। जन समर्थन प्राप्त न होने पर अच्छे उद्देश्य को लेकर किए जाने वाले कार्य भी असफल होते देखे जाते हैं।

सच्चरित्रता की पूँजी द्वारा सहयोग और सम्मान उसी प्रकार से खरीदा जा सकता है, जिस प्रकार रुपये पैसे द्वारा विभिन्न वस्तुएँ। सदाचार को वह हुंडी कहा जा सकता है, जिसे भुनाकर जन-सहयोग व जन सम्मान सहज ही प्राप्त किया जा सकता है।

आत्म-संतोष मानव-जीवन की महानतम उपलब्धि है। इसे प्राप्त करने के लिए उच्चस्तरीय चरित्र की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। कुटिलतापूर्वक अनीति अपनाकर कोई व्यक्ति तात्कालिक सफलता भले ही प्राप्त कर ले पर आत्मग्लानि और आत्म प्रताड़ना की आग में सदा ही झुलसते रहना पड़ेगा। आत्मग्लानि-तिरस्कार जैसे प्रेत पिशाच उनके पीछे लगे ही रहते हैं, जो चरित्र की दृष्टि से दुर्बल होते हैं, अविश्वास और असहयोग का दंड ऐसे लोगों को हर घड़ी भुगतना पड़ता है। इस प्रताड़ना को सहन करने वाले कभी सिर ऊँचा उठाकर नहीं चल सकते और सदा अपने को एकाकी अनुभव करते हैं। इतनी हानि उठाकर किसी ने कुछ वैभव अर्जित भी कर लिया तो समझना चाहिए उसने गँवाया बहुत और कमाया कम। उच्च चरित्र को अपनाए रहने की महत्ता को जो समझते हैं, वे आत्म संतोष, लोक सम्मान के साथ-साथ दैवी अनुग्रह भी प्राप्त करते हैं और महामानवों को मिलने वाले सम्मान से लाभान्वित होते हैं।

❑ ❑

व्यक्तित्व की कसौटी—आदर्शनिष्ठा

जिस वातावरण में मनुष्य रहता है उसमें पतनोन्मुखी प्रेरणा उभारने वाले तत्त्वों की बहुतायत है। प्रायः अधिकांश व्यक्ति उसी प्रेरणा प्रवाह में बहते रहने और किसी तरह जीवन के दिन काटते हैं। उनका न तो कोई ऊँचा आदर्श होता है और न कोई सिद्धांत। शिश्नोदर परायण जीवन की आवश्यकताओं की आपूर्ति ही उन्हें अभीष्ट होती है। उसी के इर्द-गिर्द ही उनकी समूची चेष्टाएँ गतिशील होती हैं। फलतः वे जीवनपर्यंत कुछ ऐसा नहीं कर पाते जिसे महत्त्वपूर्ण कहा जा सके। उच्चस्तरीय आदर्शों के प्रति निष्ठावान रह पाना उनके लिए कठिन पड़ता है। फलस्वरूप लोभ-मोह का लाभ अपने स्वार्थों के लिए उठाते देखे जाते हैं। समाज में ऐसे व्यक्तियों की संख्या ही अधिक है।

कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो हर तरह की परिस्थितियों में अपनी आदर्शनिष्ठा एवं सिद्धांतनिष्ठा को अक्षुण्ण बनाए रहते हैं। परिस्थितियाँ उन्हें प्रभावित नहीं कर पातीं। आदर्शों की रक्षा कर्त्तव्य परायणता को वे अपना सबसे बड़ा धर्म मानते हैं। प्रत्यक्ष घाटा उठाते हुए सहर्ष असफलताओं का वरण करते हुए भी वे अपनी प्रामाणिकता पर किसी प्रकार की आंच नहीं आने देते। ऐसे व्यक्तित्व समाज, देश और संस्कृति के गौरव होते हैं। स्वयं तो महान बनते ही हैं उनकी महानता अनेकों को प्रेरणा प्रकाश देने में समर्थ होती है।

यों तो आदर्शों एवं सिद्धांतों की बड़ी-बड़ी बातें कितने ही व्यक्ति करते रहते हैं पर उन्हें व्यवहार में तो कुछ ही उतार पाते हैं। मनुष्य की वास्तविक परख तो लोभ-मोह के अवसरों पर होती है। जो अपनी सिद्धांतनिष्ठा के प्रति अडिग रहते हैं ऐसे व्यक्तियों से ही समाज फलता-फूलता है।

ऐसे ही कुछ प्रसंग यहाँ प्रस्तुत हैं। तब अंग्रेजों का शासनकाल था। अंग्रेज अपनी संस्कृति को भारतीय जन-जीवन का अंग बनाने के लिए हर तरह से प्रयास कर रहे थे। कितने ही प्रकार के लोभ भी भारतीयों को दिए जाते थे। सरकारी कर्मचारियों को अंग्रेजी पोशाक पहनना आवश्यक कर दिया गया।। सर आशुतोष मुखर्जी के ऊपर भी अंग्रेजी वेश-भूषा अपनाने के लिए दबाव डाला गया। उनका आफीसर इस बात से सदा नाराज रहता था कि वे धोती कुरता पहनते हैं, एक दिन उस आफीसर ने आशुतोष मुखर्जी को बुलाया और कहा कि यदि तुम अंग्रेजी पोषाक पहन लो तो तुम्हारी पदोन्नति कर दी जाएगी, मुखर्जी ने अधिकारी के प्रस्ताव को दृढ़ता से इनकार करते हुए कहा ऐसा कदापि संभव नहीं है। पद एवं पैसे के लिए मैं अपना जातीय स्वाभिमान कभी परित्याग नहीं कर सकता। यह सोचकर कि ऐसा अनौचित्य पूर्ण दबाव सदा पड़ता रहेगा उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया तथा स्वतंत्रता संग्राम में अपना सक्रिय योगदान देने लगे।

काला कांकर नरेश राजा रामपाल सिंह ने हिंदुस्तान नामक पत्र आरंभ किया। उन दिनों महामना मालवीय की विद्वत्ता की ख्याति सर्वत्र फैल चुकी थी। संपादन के लिए उपयुक्त व्यक्ति जानकर राजा

रामपाल सिंह ने मालवीय जी को इस कार्य के लिए सादर आमंत्रित किया। साथ में आजीविका के रूप में दो सौ पचास रुपये महावार की एक बड़ी धनराशि भी निर्धारित कर दी। जो आज के लगभग तीन हजार रुपये के बराबर होती है। यह सोचकर कि आजीविका के साथ-साथ राष्ट्रीय विचारों को देशवासियों के समक्ष स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत करने के लिए सुअवसर मिलेगा, मालवीय जी ने राजा साहब का आमंत्रण स्वीकार कर लिया।

यह बात मालवीय जी को पहले ही मालूम हो गयी थी कि राजा साहब को शराब पीने की बुरी लत है। सोचा, शायद सुधर जाएँ। उन्होंने संपादन कार्य स्वीकार करने से पूर्व यह शर्त लगा दी कि राजा साहब कभी भी नशे की स्थिति में उनसे नहीं मिलेंगे। पर नशे के अभ्यस्त ढर्रे के कारण राजा साहब अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सके। यह देखकर मालवीय जी ने संपादन कार्य से इस्तीफा दे दिया। अधिक वेतन आदि देने का प्रलोभन राजा रामपाल सिंह देते रहे पर मालवीय जी की आदर्शनिष्ठा अविचलित ही बनी रही।

ब्रिटिश सरकार ने पंडित नेहरू को विचलित करने के लिए एक चाल चली और कहा कि यदि जवाहरलाल नेहरू देश की राजनीति में भाग लेना छोड़ दें तो उन्हें श्रीमती कमला नेहरू की देख-रेख के लिए हमेशा के लिए जेल से मुक्त किया जा सकता है। कमला नेहरू को उस समय क्षय रोग हो गया था। उन दिनों स्वतंत्रता आंदोलन तीव्र गति से चल रहा था। नेहरूजी जब बनारस जेल में थे। उक्त आशय का एक पत्र, पं० जवाहरलाल नेहरू को भी जेल में ब्रिटिश सरकार ने भेज दिया। पं० नेहरू की परीक्षा की यह विचित्र घड़ी थी। एक ओर धर्मपत्नी की रुग्णावस्था, दूसरी ओर देश प्रेम आखिर उन्होंने पत्नी से परामर्श के लिए एक दिन जेल आकर मिलने का आग्रह किया।

वे समय पर जेल पहुँच गयीं। ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव की सूचना श्रीमती कमला नेहरू को भी मिल चुकी थी। उन्होंने सजल नेत्रों से पर स्पष्ट शब्दों में नेहरूजी से आग्रह किया—"आप सहर्ष राजनीति में बने रहिये, देश को—मातृभूमि को आपकी आवश्यकता

है। इस नश्वर शरीर की देख-रेख के लिए आप राष्ट्रीय हित का परित्याग न करें।" धर्मपत्नी से प्रेरणा पाकर पं० नेहरू ने किसी भी कीमत पर ब्रिटिश सरकार का दबाव स्वीकार न करने का निश्चय किया। उधर श्रीमती कमला नेहरू की स्थिति बिगड़ती गई और अंततः उनका रुग्णावस्था में ही देहांत हो गया पर नेहरू जी की देश प्रेम की आस्था अडिग रही।

बंगाल के दिवंगत नेता डा० विधानचंद्र राय बिहार से बी. एस. सी. परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद कलकत्ता मैडीकल कालेज में डाक्टरी पढ़ रहे थे। उन दिनों कलकत्ता में ट्रामगाड़ी चलना शुरू हुआ था। उनके एक अंग्रेज प्रोफेसर थे कर्नल पैक जो अपनी घोड़ा गाड़ी से कहीं जा रहे थे। कर्नल पैक की गाड़ी ट्रामगाड़ी से टकरा गयी। विधानचंद्र के सामने ही यह घटना घटी, कर्नल साहब ने घोड़ा गाड़ी के कोचवान के विरोध में विधानचंद्र राय को गवाह बनाना चाहा। अपना मंतव्य उन्होंने राय के समक्ष स्पष्ट किया। गलती कोचवान की नहीं थी। इसलिए विधानचंद्र ने ऐसा करने से दृढ़ शब्दों में इनकार कर दिया। एक विषय की मौखिक परीक्षा के इंचार्ज यही प्रोफेसर कर्नल पैक थे। उन्होंने अपनी नाराजगी का बदला विधानचंद्र राय को मौखिक परीक्षा में फेल करके लिया। पर युवक विधानचंद्र के ऊपर इसका प्रभाव नहीं पड़ा। पूरी लगन के साथ दुबारा वे परीक्षा की तैयारी करते रहे। इस बीच कर्नल की अंतरात्मा ने भी उसे अवांछनीय कृत्य के लिए कोसा, उसने विधानचंद्र राय से क्षमा माँगी तथा उनकी सत्यनिष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

लाहौर के मिशन हाईस्कूल में नवीं कक्षा में एक विद्यार्थी पढ़ता था। तब अंग्रेजों का शासनकाल था। पढ़ाते-पढ़ाते एक अंग्रेज अध्यापक ने हिंदू धर्म और संस्कृति पर अनेकों प्रकार के आक्षेप कर डाले जिनमें यथार्थता का थोड़ा भी अंश न था। एक किशोर बालक को यह सहन न हुआ। तुरंत उठकर खड़ा हो गया तथा विनम्रतापूर्वक उसने अध्यापक के आक्षेप का तर्क पूर्ण ढंग से विरोध किया, प्रसंगवश उसने ईसाई धर्म की कुछ गलत मान्यताओं पर भी आक्षेप कर डाला। भला धर्मांध अंग्रेज अध्यापक को यह कैसे सहन हो कि एक हिंदू बालक ऐसी धृष्टता करे। अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए अध्यापक ने किशोर को बेंतों से बुरी तरह पीटा तथा

अपनी गलती स्वीकार करने के लिए विवश किया। पर मार सहते हुए भी किशोर ने अनौचित्य के सामने सिर नहीं झुकाया। यह किशोर आगे चलकर महात्मा हंसराज के नाम से सुविख्यात हुआ जिसने जीवन भर हिंदू धर्म के प्रचार एवं प्रसार का कार्य किया, पंजाब भर में दयानंद आर्य वैदिक महाविद्यालयों की स्थापना की।

मोह वश घर के सगे संबंधियों की अनौचित्यपूर्ण बातों का अधिकांश व्यक्ति विरोध नहीं कर पाते और सहन करते रहते हैं। फलतः अवांछनीय प्रचलनों को प्रश्रय मिलता है। राजा राममोहनराय एक ऐसे साहसी व्यक्ति थे जिन्होंने परिवार का विरोध लेकर भी अविवेकी मान्यताओं का डटकर विराध किया। उनके पिता अत्यंत ही रुढ़िवादी थे। किशोर वय से ही मोहनराय ने सतीप्रथा, विधवा विवाह निषेध के विरोध में आवाज उठायी। रूढ़िवादी पिता को यह अच्छा न लगा। उन्होंने मोहनराय से कहा कि "या तो तुम उपरोक्त प्रचलनों का विरोध करना छोड़ दो अन्यथा घर से निकल जाओ।" आदर्शों के प्रति निष्ठावान मोहनराय ने सहर्ष घर छोड़ देना स्वीकार कर लिया पर अविवेकी परंपराओं का समर्थन नहीं किया। जीवन-पर्यंत वे दृढ़ता के साथ अंधविश्वास, अविवेक एवं अज्ञान का विरोध करते रहे।

अपनी जान हर किसी को प्यारी होती है। ऐसे भी आदर्शों के पुंज हुए हैं जिन्होंने सहर्ष मृत्यु को वरण कर लिया पर मानवी विशेषताओं पर आंच नहीं आने दी। ब्रिटिश—न्यायालय के कठघरे में क्रांतिकारी ऊधम सिंह खड़े थे। उन्होंने ब्रिटिश पार्लियामेंट में बम विस्फोट कर तहलका मचा दिया था। जज ने प्रश्न किया "नौजवान क्या तुम अपने बचाव के लिए वकीलों की सहायता लेना चाहते हो ?" उत्तर मिला नहीं। प्रश्नों का सिलसिला चल ही रहा था कि एक अंग्रेज युवती भीड़ को चीरती हुई न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित हुई। माननीय न्यायाधीश से उसने युवक ऊधमसिंह से कुछ पूछने की अनुमति माँगी। अनुमति मिलते ही वह ऊधमसिंह से बोली 'युवक क्या तुम बता सकते हो कि जब तुम्हारी रिवाल्वर में तीन गोलियाँ शेष थीं, तो तुमने मुझ पर गोली चलाकर निकल भागने की कोशिश क्यों नहीं की ? तुम्हारे पास एक चाकू भी था। चाहते तो वार करके आसानी से निकल सकते थे।' उल्लेखनीय है कि वह अंग्रेज युवती ही ऊधमसिंह की गिरफ्तारी का कारण बनी थी।

ऊधमसिंह ने अत्यंत शिष्टता और विनम्रता से उत्तर दिया "बहन ! हम भारतीय हैं। स्त्री पर हाथ उठाना हमारी संस्कृति के विरुद्ध है। इसलिए मैंने रिवाल्वर की गोलियों का उपयोग नहीं किया तथा जेब में पड़े चाकू को भी विश्राम करने दिया। यदि आपके स्थान पर कोई अंग्रेज अफसर होता तो मेरी गोली का अवश्य निशाना बन जाता।"

युवती के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। प्राणों की बलि देकर भी सांस्कृतिक आदर्शों के ऊपर आँच न आने की अपूर्व एवं बेमिसाल निष्ठा को देखकर उपस्थित जन समुदाय के नेत्र भी सजल हो उठे। नर नाहर उधम सिंह को मृत्यु दंड मिला पर आज भी उनके साहस व आदर्शनिष्ठा को याद करके हर भारतीय का सिर श्रद्धा से झुक जाता है। एक ओर प्रत्यक्ष असफलता को भी वरण करके आदर्शों की रक्षा करने वालों के उपरोक्त उदाहरण हैं जिनके अविस्मरणीय संस्मरण याद आते ही हृदय पुलकित हो उठता है। दूसरी ओर आज की स्थिति को देखकर मन ग्लानि से भर उठता है। तिनके की भाँति अवांछनीयता के प्रवाह में बहने तथा डूबने उतराने वालों की ही आज समाज में बहुतायत है। ऐसों से भला समाज एवं संस्कृति के उत्थान की किस प्रकार आशा की जा सकती है। इस समय देश को सर्वाधिक आवश्यकता है ऐसे ही आदर्श परायण-चरित्रनिष्ठ व्यक्तित्वों की।

❑ ❑

बड़प्पन का मापदंड—सादगी और शालीनता

सामान्य जनों की बड़प्पन की परिभाषा यह है कि अधिक से अधिक लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो। ज्यादा लोग उनकी चर्चा करें। इसके लिए वे फैशन, सज-धज, ठाट-बाट और अमीरों जैसा खर्च करके लोगों पर यह प्रभाव जमाने की असफल चेष्टा करते हैं कि वे विशिष्ट हैं। परोक्ष रूप में इस सजधज के पीछे यह आग्रह रहता है कि उनकी विशेष स्थिति को स्वीकार किया जाए,

उनके बारे में बार-बार सोचा जाए। यह उद्देश्य पूरा करने के लिए जितना आडंबर रचना पड़ता है, उसे सरंजाम जुटाना पड़ता है और जितना समय खर्च करना पड़ता है, उसे सामान्य रूप से नहीं किया जा सकता। उसके लिए असामान्य तरीके अपनाने पड़ते हैं। अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए सीधे तरीकों से तो काम नहीं चलता। उसके लिए अपनानी पड़ती है—धूर्तता, नाटकीयता, उच्छृंखलता, आडंबर और पाखंड। क्योंकि इतने साधन और सरंजाम बिना छद्म नीति अपनाए तो जुटाए नहीं जा सकते, इतना बड़ा ढाँचा बिना बेईमानी किए तो खड़ा नहीं किया जा सकता, जिसे कि लोग घूर-घूर कर देखें और उस संबंध में बार-बार सोचें।

लोग यह भूल जाते हैं कि बड़प्पन और महानता केवल सादगी तथा शालीनता अपनाने से ही होती है। यह बात अलग है कि सीधी, सरल और सज्जनता की नीति अपनाकर तत्काल ही चर्चा का विषय नहीं बना जा सकता। इसमें देर लगती है, परंतु बड़ा बनने का राजमार्ग यही है। महानता या बड़प्पन वट वृक्ष की तरह है, जिसका विकास क्रमबद्ध ढंग से ही होता है। उसकी अभिवृद्धि एवं सुरक्षा के लिए लंबे समय तक तत्परता और सतर्कता का खाद पानी मिलना चाहिए। जिन्हें वाहवाही की आतुरता है, वे इतनी प्रतीक्षा क्यों करेंगे और सज्जनता एवं प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए कष्ट क्यों सहेंगे ? आतुरता के लिए इतने महँगे मूल्य पर वाहवाही खरीद सकना कठिन ही है। उसके लिए धूर्तता ही सरल उपाय रह जाता है। उसमें कहीं कोई त्याग करने या शौर्य, साहस प्रदर्शित करने की आवश्यकता पड़ती है तो वह नाटकीयता और उच्छृंखलता के ऐसे तरीके अपनाने भर से पूरी हो जाती है, जो सर्वसाधारण के स्वभाव में सम्मिलित नहीं है। ऐसे काम जिनमें दूसरों की हानि में भी अपने लाभ की दृष्टि प्रमुख रखी जाती है अनैतिक ही कहे जाएँगे। अनैतिक न सही क्षुद्रता से भरे तो होते ही हैं। उन्हें ओछे, बचकाने एवं छिछोरे भी कहा जा सकता है। नाटकीय सजधज बनाने वाले लोग प्रायः ऐसी आत्महीनता से ग्रस्त होते हैं।

इस तरह की आत्महीनता से ग्रस्त लोगों की क्षुद्रता का मनोरंजक वर्णन अंग्रेजी उपन्यासकार सामरसेट ने अपनी पुस्तक 'दि सामं अप' में किया है। इस पुस्तक में साम ने ऐसे बचकाने लोगों

की मनःस्थिति, तर्क एवं मान्यताओं का विवरण देते हुए उन पर करारा व्यंग किया है और यह भी बताया है कि ऐसे आतुर व्यक्ति ही आतंकवादी बनते, उद्धत आचरण करते और गुंडागर्दी अपनाते हैं। यहाँ तक कि अपराधी बनकर फांसी पर चढ़ने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। चर्चा बुरी ही क्यों न हो, पर होनी अवश्य चाहिए। यह उनकी धारणा होती है। अनेक आततायी और अपराधी किसी अभाव के कारण नहीं बल्कि उसी उद्धत ओछेपन से पीड़ित होकर कुकृत्य करने पर उतारू हो जाते हैं और अपनी गणना शूरवीरों में कराने की सनक लेकर इस कदर अनाचार-दुराचार करने की पैशाचिकता अंगीकार करते हैं।

कई लोग अपनी शक्ति और प्रभाव की सार्थकता इसी बात में समझते हैं कि उसके द्वारा वे दूसरों को कितना नुकसान पहुँचा सकते हैं। यह एक भ्रांत धारणा ही कही जाएगी कि दूसरों को नुकसान पहुँचाने की क्षमता का नाम शक्ति है। ऐसे कृत्य प्रायः लुक छिपकर ही किए जाते हैं। असावधान व्यक्ति पर छिपकर पीछे से हमला करके तो कोई अदना-सा आदमी भी किसी सशक्त व्यक्ति के प्राण हरण कर सकता है। पीठ पीछे से बार करने में क्या दिक्कत है ? विश्वासघात करने की धूर्तता में कौन-सा बड़प्पन है ? इसकी तुलना में सज्जनता और शालीनता से दूसरों को प्रभावित करने की रीति-नीति अपनाई जाए तो यह अनुभव का ही विषय है कि वह कितनी असरकारक होती है और यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि बड़प्पन के लिए जिस सज्जनता की आवश्यकता पड़ती है वह नाटकीयता, बनावटीपन से पूरी नहीं होती, बल्कि उसे स्वभाव का, चरित्र का एक अंग बनाना होता है। यह काम समय और श्रम साध्य ही नहीं है, इसके लिए आदर्शवादिता पर दृढ़ रहने का मनोबल, आत्मबल भी चाहिए। कहना नहीं होगा कि इस स्तर का बड़प्पन साधनात्मक जीवन अपना कर ही प्राप्त किया जा सकता है।

सौजन्यता और शालीनता को कुंठित करने वाले कई कुसंस्कार हैं जो हमें असभ्य और भ्रष्ट बनाते चले जाते हैं। दूसरों को छोटा बनाकर अपने आपको बड़ा सिद्ध करने का तरीका गलत है। सच्चाई की दृष्टि से औरों से आगे बढ़ा जाए यही स्वस्थ प्रतियोगिता है। श्रेष्ठता की प्रतियोगिता में आगे निकलने के उत्साह को सराहा जा

सकता है, पर साथियों को लात मार कर गिरा देना और इस स्थिति का लाभ उठाकर अपने को विजेता घोषित करना न तो सराहनीय है तथा न ही यथेष्ट। इसी प्रकार अपनी वर्तमान स्थिति से खीझे रहना भी शील सौजन्य के विपरीत है। जो उपलब्ध है उस पर प्रसन्नता भरा संतोष अनुभव करें और साथ ही आगे बढ़ने का उत्साह भी जारी रखें। इतना कर लिया जाए तो प्रसन्न रहने और शील सदाचार का पालन करने के लिए पर्याप्त है। किंतु जो सदा असंतुष्ट ही रहते हैं, खीझते रहते हैं, उनकी खीझ और खिन्नता उनकी शक्तियों को नष्ट करती है।

अहंकार व्यक्ति को दूसरों से प्राप्त होने वाली सद्भावनाओं से वंचित करता है। दूसरों का व्यंग उपहास करके कई व्यक्ति अपना बड़प्पन सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। कई संवेदन शून्य सहानुभूति रहित और निर्भय प्रकृति के व्यक्ति दूसरों की स्थिति समझे बिना ही उनके व्यवहार और आचरण पर उल्टी-सीधी टिप्पणियाँ करते रहते हैं। उन्हें दूसरों की स्थिति समझने का अवकाश ही नहीं रहता और न उनका हृदय इतना विशाल होता है कि किस कारण किस पर क्या बीत रही है ? यह अनुभव कर सके। इन प्रवृत्तियों के रहते उस शील सौजन्य का विकास नहीं हो सकता, जिससे मनुष्य अपनी तथा दूसरों की आँखों में ऊँचा उठता तथा सम्मानित बनता हो।

यदि तत्काल बड़प्पन पाने या बनने की आतुरता न हो और संपर्क क्षेत्र में अपने लिए भावभरा सम्मान प्राप्त करने की सच्ची आकांक्षा हो तो उसका सुनिश्चित मार्ग है सज्जनता अपनाई जाए। अपने संपर्क क्षेत्र के सभी व्यक्तियों से व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण रखा जाए। व्यवहार और आचरण न्याय संगत रहें। यदि स्वार्थों में कहीं कोई टकराव होता हो, पीछे हटने से थोड़ा बहुत घाटा भी पड़ता हो तो उसे सह लिया जाए किंतु सद्भाव गँवा देने की क्षति ऐसी है जो अंततः अधिक घाटे की सिद्ध होगी। जब तक टकराव का कोई बहुत ही बड़ा कारण न हो, सामने वाले का पथ अनैतिकतापूर्ण न हो तब तक व्यवहार कुशलता इसी में है कि सद्भाव को बनाए ही रखा जाए।

सौजन्यता का प्रभाव निजी जीवन में सादगी के रूप में दीखता है और व्यवहार क्षेत्र में वह विनयशीलता के रूप में दिखाई पड़ता है।

उसमें दूसरों के सम्मान का भाव है न कि छोटापन प्रदर्शित करने का। किसी का सम्मान करने का अर्थ है बदले में उनका सम्मान पाना। दूसरे कम कीमत में सम्मान पाने की बात बन ही नहीं सकती। सादगी से रहा जाए, शालीनता बरती जाए और दूसरों को संतुष्ट रखकर उन पर अपना प्रभाव छोड़ने की कला सीखी जाए, इससे बढ़कर अपने आपको बड़ा बनाने, ऊँचा उठाने का कोई श्रेष्ठ उपाय है ही नहीं।

❐ ❐

शालीनता और सदाशयता को प्रश्रय मिले

शोधकार्य को यश एवं गौरव प्रदानकर्त्ता माना जाता है। वैज्ञानिक, मनीषी इसी प्रक्रिया में निरत रहते हैं। सरकार द्वारा शोधक्रम को परिपूर्ण प्रोत्साहन दिया जाता है। शोध निबंध रचने वाले या किसी दार्शनिक, वैज्ञानिक खोज में सफलता पाने वालों को सम्मानित डाक्टर की पदवी भी मिलती है। कई बार तो शोधकर्त्ता के नाम पर ही उसकी सफलता का नामकरण कर दिया जाता है।

नए खोजे गये गृह नक्षत्रों में से अनेक का नामकरण तो शोधकर्त्ताओं के नाम पर ही कर दिया गया है। हिमालय की सर्वोच्च चोटी का सर्वेक्षण कर पता लगाने वाले एवरेस्ट के नाम पर ही उस चोटी को भी 'माउण्ट एवरेस्ट' नाम से पुकारा जाता है। भागीरथी को खोज निकालने और उसे जनोपयोग की स्थिति में लाने में सफल हुए महामानव का नाम भागीरथ पड़ा अथवा भागीरथ के श्रम को सम्मान देने के लिए उनकी उपलब्धि को भागीरथी कहा गया।

जिन वैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण आविष्कार किए हैं, उनके शोध श्रम को मनुष्य समुदाय सदा-सर्वदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करता रहेगा। जिन दैवज्ञों ने अंतरिक्ष को खोजा, जिन मनीषियों ने रोगनिदान, कारण व उपचार का क्रम खोजा, उनके प्रति, पीड़ितों और पर्यवेक्षकों की अगाध श्रद्धा और कृतज्ञता बनी रहेगी। अमेरिका को खोज निकालने वाले कोलंबस को उसकी तत्परता के लिए अनंतकाल तक सम्मान भरा यश मिलता रहेगा। सेवा में यों अनेक प्रसंग संदर्भों की गणना होती है, पर

शोध का अपना अलग ही महत्त्व है। उसमें प्रत्यक्ष दान पुण्य जैसा कोई घटनाक्रम तो घटित होता नहीं दीखता, इतने पर भी सत्परिणामों को ध्यान में रखने वाले उस प्रयास को पर्वत जैसे दानपुण्य की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण माना और श्रेय दिया जाता है।

हनुमान जी के समस्त चमत्कारों में सर्वोच्च महत्त्व का कार्य वह माना जाता है जिसमें उन्होंने सघनवन पर्वतों को ढूँढ़ते-छानते अंततः सीता को खोज निकाला। इस सफलता के बाद उन्हें वापिस लाने का कार्य अत्यधिक हल्का हो गया। ऐसे ही कथानकों में एक प्रसंग वह भी है जिसमें राजा सगर के खोए हुए यज्ञ-अश्व की तलाश के लिए अपने एकाएक परिजन को जुटा दिया गया था और निर्देश दिया गया था कि वे खोजे बिना वापिस न लौटें।

इन दिनों जिस वस्तु की अत्यधिक आवश्यकता पड़ रही है उसका नाम है—"आदेशों के प्रति आस्था।" इस एक ही वस्तु की कमी पड़ने से भयानक दुर्भिक्ष जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई है और सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची है। साधन, सुविधाओं की कमी नहीं, यदि है तो उसकी पूर्ति के प्रयास हर क्षेत्र में तत्परता पूर्वक हो रहे हैं। शिक्षा वृद्धि से लेकर उपार्जन उद्योग तक के प्रगति प्रसंगों में विज्ञ समाज की शासन तंत्र की समुचित दिलचस्पी, दिखाई पड़ रही है। यह दूसरी बात है कि इस संदर्भ में दृष्टिकोण क्या अपनाया गया और कदम सीधी थी या उल्टी राह पर उठाया गया।

भौतिक उपलब्धियों की कमी नहीं—जो है उसकी पूर्ति अगले दिनों हो जाने की आशा बंधती और बढ़ती जा रही है। जिस क्षेत्र में निस्तब्धता और निराशा दृष्टिगोचर होती है 'शालीनता का उत्पादन—अभिवर्धन।' इसके अभाव में जो कमाया-उगाया जा रहा है, उसका दुरुपयोग ही बन पड़ता है। फलतः लाभ की बात सोचने वाले भी पग-पग पर घाटा देखते और अंततः हानि बढ़ती देखकर निराश होते हैं। इस संदर्भ में कई लोकोक्तियाँ बहुत ही मजेदार हैं—एक में कहा गया है—'अंधी पीसै कुत्ता खाय।' दूसरी में कहा गया है—अंधा रस्सी बटता जाए—बछड़ा उसको खाता जाए।' तीसरी में 'दो जगह जोड़ने—चार जगह टूटने' की चर्चा है। इन सबमें उस स्थिति का उल्लेख है जिसमें आवश्यक देख-भाल की सतर्कता के—अभाव में

प्रयास पुरुषार्थ को निरर्थक जाने—निष्फल होने की बात कही गई है। इन दिनों शालीनता के अभाव में उपलब्ध साधनों का वैसा उपयोग बन नहीं पड़ रहा है जैसा कि आवश्यक है।

साधन कितने ही—कुछ भी क्यों न हों, उपयोगिता तभी बढ़ती है जब उनके प्रायोक्ता दूरदर्शी एवं सद्भाव संपन्न हों। दुरुपयोग होने पर तो अमृत भी विष बन जाता है। सुई जैसी उपयोगी वस्तु भी प्राण-घातक बन सकती है। साधन कितने ही लाभदायक या प्रचुर क्यों न हों, उनका दुरुपयोग चल पड़े तो फिर विनाश ही विनाश है। दीपक जलाने वाली दियासलाई गलत हाथों में जाकर पूरे गाँव-नगर को भस्मसात् कर सकती है।

संसार का गौरव और भविष्य श्रेष्ठ व्यक्तित्वों-महामानवों पर अवलंबित है। वे जितने ही बढ़ेंगे उसी अनुपात में सुखद परिस्थितियाँ बन पड़ेंगी। वे जितने घटेंगे, उतना ही दुःखद दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी और दुर्घटनाएँ घटेंगी। इन दिनों यह हो भी रहा है। हर क्षेत्र का नेतृत्व घटिया लोगों के हाथों में खिसकता जा रहा है। अग्रिम भूमिका ओछे लोगों के हाथों में पहुँचती जाती है। साहित्य, संगीत, कला जैसे बौद्धिक, उद्योग उत्पादन जैसे आर्थिक, प्रगति, सुरक्षा जैसे शासकीय, चिंतन-चरित्र जैसे धार्मिक क्षेत्रों में अवांछनीयता का प्रवेश क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है, इसका कारण एक ही है—उत्कृष्ट व्यक्तित्वों का अभाव। वे अग्रिम पंक्ति में कहीं दीखते ही नहीं हैं। हैं, तो कहीं किसी कोने में मुँह छिपाए बैठे हैं। आंतरिक उत्साह, प्रखर उद्बोधन एवं अनुकूल वातावरण के अभाव में वे कुछ कर पाने का साहस नहीं जुटा पा रहे सहमे झिझके से किसी कोने में पड़े समय गुजार रहे हैं। यह कहना तो उचित न होगा कि शालीनता संसार से उठ गई। ऐसी मान्यता तो एक प्रकार की नास्तिकता होगी। जब सृष्टा के इस सुरम्य उद्यान में किसी भी महान तत्त्व का आत्यंतिक विनाश नहीं होता, अस्तित्व किसी न किसी रूप में बना ही रहता है तो ऐसा क्यों माना जाए कि संसार में से शालीनता उठ गई और अवांछनीयता की सत्ता सर्वदा के लिए जड़ जमाकर बैठ गई, सारी दुनिया पर छा गई। रात्रि के सघन अंधकार में भी प्रकाश का अस्तित्व कहीं न कहीं रहता ही है, भले ही दूरस्थ तारकों में टिमटिमाता क्यों न दीखे।

अपने समय का सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि शालीनता को ढूँढे निकाला जाए। आज तो वह विलुप्त स्थिति में जा पहुँची है और खोजने पर कठिनाई से जहाँ-तहाँ उसके झलक-झाँकी मिलती है। होना यह चाहिए कि जहाँ कहीं भी छिपी बैठी हो, उसे ढूँढ़ निकाला जाए, मूर्च्छना से विरत किया जाए। जाग्रत सक्रिय बनाया जाए, सघन संघबद्ध किया जाए और उछालने उभारने का इतना समर्थ प्रयत्न किया जाए कि वह अग्रिम मोर्चे पर जा खड़ी हो। महत्त्वपूर्ण कार्यों की जिम्मेदारी सुविधा साधन भी इतने पर्याप्त सिद्ध हो सकते हैं कि उनके बलबूते अपनी दुनिया सुख-शांति से भरी पूरी दृष्टिगोचर होने लगे।

युग परिवर्तन का तात्पर्य यही है कि उच्चस्तरीय प्रतिभाएँ उभरें और उज्ज्वल भविष्य की संरचना में अपना पुरुषार्थ लगाएँ। "मनुष्य में देवत्व का उदय" इसी को कहा जाएगा। इतना बन पड़े तो समझना चाहिए कि धरती पर स्वर्ग अवतरण की संभावनाएँ सार्थक होने में कोई कठिनाई शेष नहीं रहती। अवरोध की चट्टान एक ही है उत्कृष्टता और प्रखरता से भरे-पूरे व्यक्तियों का अभाव, पलायन अथवा बिखराव विसंगठन। इन दिनों इन्हीं को जहाँ-तहाँ से ढूँढ़ निकालना है। यदि उन्हें खोजा जा सका, जमा किया और जगाया उभारा जा सका तो समझना चाहिए समस्याओं, विपत्तियों, विभीषिकाओं का तीन चौथाई हल निकल आया।

सदाशयता को ढूँढ़ निकालना—प्रखर परिष्कृत बनाना, सत्प्रवृत्तियों के लिए नियोजित कर लेना, यह समूची कार्य पद्धति ऐसी है जिसे देव परंपरा ही कहा जा सकता है। जो अपनाते हैं वे स्वयं धन्य बनते और अन्यों को भी धन्य बनाते हैं। प्रस्तुत विषम बेला में इस स्तर के प्रयत्नों में संलग्न व्यक्तियों की ही आवश्यकता है। इन्हें ही युग पुरुष कहा जाएगा। ऐसे सृजन शिल्पी स्वयं तो कृतकृत्य होंगे ही, असंख्यों अन्यान्यों को भी उच्चस्तीय श्रेय उपलब्ध कराने वाले बड़भागी बनेंगे।

❑ ❑

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा